मान मंदिर बरसाना

मासिक पत्रिका, वर्ष १०, अंक ०७, श्रीकृष्ण सं. ५२५२ 'आषाढ़-श्रावण' वि.सं. २०८३ (जुलाई २०२६ ई.)

राधैवेष्टं सम्प्रदायैक कर्ताऽऽचार्यो राधा मंत्रदः सद्गुरुश्च | मंत्रो राधा यस्य सर्वात्मनैवं वंदे राधापादपद्म-प्रधानम् ||

श्रीराधा ही जिनकी इष्ट हैं, श्रीराधा ही जिनके सम्प्रदाय का एकमात्र प्रवर्तक आचार्य हैं, जिनकी मंत्रदाता सद्गुरु श्रीराधा ही हैं, जिनका मंत्र भी श्रीराधा ही हैं; श्रीराधाचरणकमलों की प्रधानता रखने वाले उन रसिकों की हम वंदना करते हैं |

मूल्य १०/-

विशेष - गुरुपूर्णिमा-महोत्सव / गौ-सम्मान आह्वान अभियान

गो सम्मान आव्हान अभियान को विश्व रिकॉर्ड का गौरव

5.25 करोड़ हस्ताक्षरों के जन-अभियान पर संत श्री अच्युतानंद जी महाराज को सौंपा सम्मान-पत्र

अभियान की प्रमुख बातें

- 27 अप्रैल 2026 को देशभर के 5 हजार से अधिक तहसीलों में एक साथ कार्यक्रम आयोजित
- 5.25 करोड़ से अधिक गौभक्तों, संतों और नागरिकों के हस्ताक्षर युक्त ज्ञापन एकत्र
- विश्व का सबसे बड़ा बहु-स्थान जन-हस्ताक्षर एवं ज्ञापन अभियान घोषित
- गोमाता को राष्ट्रमाता घोषित करने की मांग को मिली ऐतिहासिक उपलब्धि

अंतिम युद्ध - प्रदीप जैन

● इंदौर। गोमाता को राष्ट्रमाता घोषित करने की मांग को लेकर चलाए गए गो सम्मान आह्वान अभियान को स्वर्णिम बुक ऑफ रिकॉर्ड्स ने विश्व रिकॉर्ड के रूप में मान्यता प्रदान की है। संस्थापक वीरेन्द्र कुमार जैन एवं रेखा जैन ने संत श्री अच्युतानंद जी महाराज को गौरव प्रमाण-पत्र भेंट कर सम्मानित किया।

● अभियान के तहत 27 अप्रैल 2026 को देशभर के 5 हजार से अधिक तहसील मुख्यालयों पर एक साथ जन-जागरण कार्यक्रम आयोजित कर 5.25 करोड़ से अधिक गौभक्तों, संतों और नागरिकों के हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन एकत्र किए गए। इसे विश्व का सबसे बड़ा बहु-स्थान जन-हस्ताक्षर एवं ज्ञापन अभियान घोषित कर रिकॉर्ड बुक में दर्ज किया गया।

● संत श्री अच्युतानंद जी महाराज ने कहा कि यह उपलब्धि केवल रिकॉर्ड तक सीमित नहीं, बल्कि गोसवर्धन, गोसंवर्धन और जन-जागरण का सशक्त राष्ट्रीय अभियान है। उन्होंने सभी गौसेवकों और कार्यकर्ताओं को बधाई देते हुए अभियान को निरंतर गति देने का आह्वान किया।

अभियान का अगला चरण 27 जुलाई 2026 को आयोजित होगा

15 करोड़ हस्ताक्षरों का लक्ष्य रखा गया है

अभियान की प्रमुख माँगें

- गोमाता को राष्ट्रीय धरोहर का दर्जा दिया जाए
- गौहत्या पर प्रभावी प्रतिबंध लगाया जाए
- गौशालाओं को सुदृढ़ और आत्मनिर्भर बनाया जाए
- गौ-आधारित प्राकृतिक कृषि को बढ़ावा दिया जाए
- पंचगव्य उत्पादों के प्रचार एवं उपयोग को प्रोत्साहन मिले
- गौसंरक्षण हेतु ठोस राष्ट्रीय नीति बनाई जाए

SWAARNIM BOOK OF RECORDS

Gopesh Krishna Daas

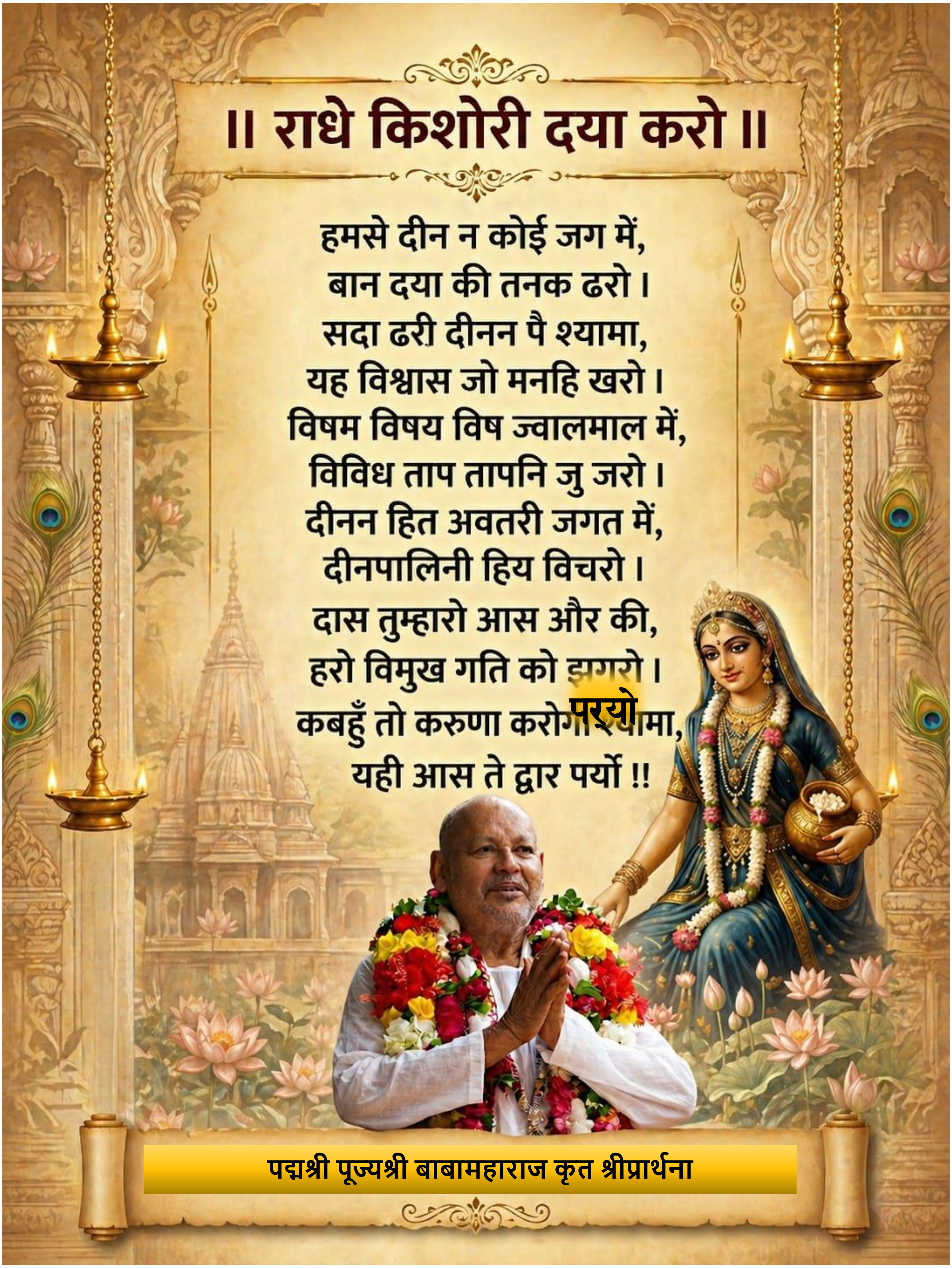
॥ राधे किशोरी दया करो ॥
हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
पर्‍यो
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्यो !!
पद्मश्री पूज्यश्री बाबामहाराज कृत श्रीप्रार्थना

विषय-सूचिका

क्रमांक	प्रसंग	पृष्ठांक
१	वास्तविक भक्ति 'सद्गुरु-शरण'	०६
२	श्रीकूरेशजी की 'गुरु-भक्ति'	११
३	अनुपम उपकारी 'गौमाता'	१४
४	श्रीगुरु-आराधना	१६
५	रसिकाचार्य श्रीवंशीअलीजी की जीवनी	१८
६	ब्रज की मधुर उपासना	२९
७	श्रीभाव-भक्ति	३२

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें। हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है है।

INSTALL करें --- PLAY STORE से---- MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से

FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन live व d-live प्रसारण देख सकते हैं।

संरक्षक- श्रीराधामानबिहारीलाल, प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर ,गह्वरवन, बरसाना, मथुरा** (उ.प्र.)
mob. **राधाकांत शास्त्री** -9927338666, **ब्रजकिशोर दास- ८९७९३१२९२२**
Website :www.maanmandir.org , (E-mail :info@maanmandir.org)

इस पत्रिका को आप google chrome **पर जाकर सीधे** free download **कर सकते हैं आपको केवल इतना सर्च करना है- हमारे बारे में। मान मंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट (यहाँ से आप पत्रिका सीधे** download **कर सकते हैं) मान मंदिर से प्रकाशित अन्य साहित्य (पुस्तकें) आप यहाँ से** download **कर सकते हैं –** Download Maan Mandir Publications (books) FREE

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें, जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ। जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि।।(श्रीमद्भागवत ३/७/४१) अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुडाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है; समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता।

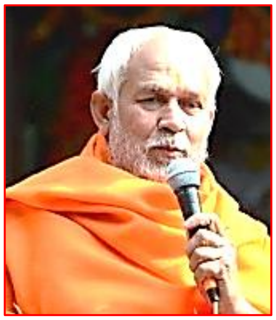

प्रकाशकीय

मनुष्य अपने स्वभाव के आधीन है –

'स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते' – (श्रीभागवतजी - १०/२४/१६)

अपने स्वभाव को बदल दो तो माया से मुक्त हो जाओगे । स्वभाव ही हम लोग नहीं बदल पाते हैं । हमारा सबसे बड़ा शत्रु हमारा स्वभाव ही है । हम लोग दूसरे को शत्रु मानते हैं; घर में भाई, बहन, सौत, माँ-बाप आदि एक-दूसरे से चिढ़ते हैं, परन्तु वास्तव में शत्रु तो हमारा स्वभाव ही है, हमें अपने शत्रु की पहचान नहीं है । **'शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः'** – (श्रीभागवतजी - १०/२४/१७)

स्वभाव जन्य 'कर्म' ही शत्रु, मित्र और उदासीन है । कर्म ही गुरु है और कर्म ही ईश्वर है । 'भगवद्भक्त' का जो शील स्वभाव होता है, उस स्वभाव की शिक्षा जिसको मिल जाती है, वे भी माया को पार कर जाते हैं अर्थात् बड़ी बात यह है कि 'भक्ति' जिसके अन्दर है, उस भक्त का स्वभाव अत्यन्त विलक्षण होता है, तभी तो विनयपत्रिका में गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने लिखा है – **'कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो । श्रीरघुवीर कृपालु कृपा ते, भक्त स्वभाव गहौंगो ॥'** भक्त का स्वभाव कैसा होता है, यह भगवान् ने गीता के बारहवें अध्याय में बताया है कि भक्त में ऐसे विलक्षण भक्तिमय सद्गुण होते हैं – **'यो मद्भक्तः स मे प्रियः'** । अतः विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि सद्गुरुदेव के पास जाकर हमें स्वभाव सीखना चाहिए । ब्रह्माजी कहते हैं कि गुरु-संत-भक्त की शील-शिक्षा ग्रहण करना चाहिए अर्थात् भक्त कैसे बोलता है, कैसे उठता-बैठता है, कैसे व्यवहार करता है; ये सारी बातें गुरुजनों से सीखनी चाहिए । यही वास्तविक गुरु और शिष्य का सच्चा सम्बन्ध है । श्रीसद्गुरु के पास जाकर 'अद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा' ग्रहण करनी चाहिए, यही वह वस्तु है जो माया से पार कराएगी । इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए । 'ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायाम्' अर्थात् देवमाया को कौन पार करेंगे, वही पार करेंगे, जिनके स्वभाव में भक्त की तरह शील आ गया है । हम लोगों को भक्त का जो शील स्वभाव है, भक्त की जिस प्रकार की बोलने-चालने की शैली है, वह सीखनी है; तब हम माया पर विजय प्राप्त कर सकेंगे । सांसारिक समस्त मिथ्या आसक्तियों को दूर करने का उपाय ऋषभ भगवान् बताते हैं कि श्रीगुरुदेव का भक्तिपूर्वक अनुगमन किया जाए । वस्तुतः 'गुरु' के अन्दर संसार के विषय-भोगों की आसक्ति को छुड़ाने की शक्ति होती है । सच्चे गुरुजन निःसंग (आसक्ति 'राग' से रहित) होते हैं, जिससे शरणागत शिष्य भी बिना किसी उपदेश के ही असंग (अनासक्त) बन जाता है । इसलिए ऐसे गुरु का भक्ति सहित दिन-रात अनुगमन करना चाहिये । ऐसा नहीं कि साल में एक बार दण्डवत कर आये, उनका सतत् सत्संग करते हुए अनुगमन (अनुशीलन) करना चाहिये । जैसे मनुष्य भगवान् की सेवा नित्य करता है, वैसे ही सद्गुरु की सेवा भी नित्य करना चाहिये; नित्य न कर सके, फिर भी यथाशक्ति करनी चाहिए । गुरु और भगवान् को शास्त्र में एक समान स्थिति पर रखा गया है । वेदों में भी कहा गया है – **'यथा देवे तथा गुरौ ।'** जैसे भगवान् की सेवा करें, उसी प्रकार गुरु की सेवा भी वितृष्ण होकर करें ।

'श्रीमानमन्दिर कला अकादमी' द्वारा 'गुरुपूर्णिमा' (२९ जुलाई 'आषाढ़, शुक्ल, पूर्णिमा') की पूर्व संध्या वेला (२८ जुलाई की शाम) में रसिकाचार्य 'गो. श्रीवंशीअलीजीमहाराज' की नाट्य-प्रस्तुति सम्पन्न होगी ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

वास्तविक भक्ति 'सद्गुरु-शरण'

भावाभिव्यक्ति – अध्यक्ष – डॉ. श्रीरामजीलालजी शास्त्री,
श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

बाबाश्री के सत्संग (१५/७/२०११) से संकलित

दास का पहला लक्षण है भगवान् का आश्रय और आश्रय है तो उन्हीं की आज्ञा मानना, उन्हीं पर विश्वास रखना, दैन्य होना । भक्ति में कुछ अंग ऐसे होते हैं जो भगवान् के लिए लिखे तो गये हैं किन्तु वे भगवान् पर घटित नहीं होते हैं । ऐसा आचार्यों ने भी लिखा है जैसे नवधा भक्ति है । नवधा भक्ति के बारे में प्रह्लादजी ने भागवत में कहा है किन्तु जीव के लिए उसका घटित होना सम्भव नहीं है । यह एक समस्या है । नवधा भक्ति के लक्षण हैं – **श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥** (श्रीभागवतजी ७/५/२३)

यह नौ प्रकार की भक्ति कही तो भगवान् के लिए है किन्तु यह घटती नहीं है । इसमें बहुत सी कठिनाइयाँ हैं । जब घटती नहीं है तो इसकी सम्भावना कैसे है, इसका उत्तर आचार्यों ने दिया है । भक्ति का पहला लक्षण श्रवण तो घट जायेगा जैसे भगवान् की कथा सुनो । श्रवण से ही भक्ति का आरम्भ होता है । सबसे पहले मनुष्य भगवान् के बारे में सुनता ही है । संसार में तो हम देखकर आगे चलते हैं किन्तु परमार्थ में देख नहीं सकते केवल सुनकर आगे चलना पड़ेगा । इसीलिए ब्रह्माजी ने अध्यात्म के पथ को 'श्रुतेक्षित-पथ' कहा है । यह दृश्य नहीं है ।

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् । (श्रीभागवतजी ३/९/११)

ब्रह्माजी कहते हैं कि इस अध्यात्म के पथ में आँखों से कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा । भक्ति कर रहे हैं किन्तु कुछ दिखाई नहीं देगा क्योंकि सामने भगवान् नहीं हैं । संसार में तो देखकर ही किसी से सम्बन्ध स्थापित होता है । विवाह करना है तो लड़की-लड़का का आपस में देखकर सम्बन्ध होता है लेकिन भक्तिमार्ग में ऐसा नहीं है । ब्रह्माजी ने कहा कि यह 'श्रुतेक्षित-पथ' है, इसमें सुनना ही देखना है । हम सुनते हैं कि प्रभु है, उसमें करुणा है । इस मार्ग का प्रारम्भ ही श्रवण से होता है । इसलिए नवधा भक्ति में श्रवण भक्ति पहले है । देखना पीछे होता है । सुनकर तुमने जो भावना किया, तब उस भावना के अनुसार भगवान् दर्शन देंगे लेकिन इस मार्ग में पहले सुनना होता है । इसलिए पहली भक्ति है श्रवण और यह तो भगवान् में घटित हो जाती है । दूसरी भक्ति है कीर्तन, यह भी घट जाती है । नाम-कीर्तन कर लो, गुण-कीर्तन कर लो, जन-कीर्तन कर लो । तीसरी भक्ति है स्मरण, यह भी घट जाती है । भगवान् का स्मरण कर लो । ये तीन भक्ति तो घट जाती हैं । चौथी भक्ति है पाद-सेवन, यह नहीं घटेगी । मूर्ति के चरण की सेवा की जा सकती है किन्तु भगवान् तो सामने हैं नहीं, ऐसी स्थिति में साक्षात् रूप से उनके चरणों की सेवा कैसे की जा सकती है ? इस तरह यह चौथी भक्ति नहीं घटेगी । इसीलिए मूर्ति पूजा चलायी गयी क्योंकि पाद सेवन जरूरी है । अब भगवान् तो सामने हैं नहीं कि उनके चरण धोये जाएँ, उन्हें दण्डवत प्रणाम किया जाए । इसलिए वास्तव में पाद सेवन भक्ति घटित नहीं हो सकती है । ऐसी स्थिति में जैसा कि भागवत के दशम स्कन्ध में यमलार्जुन ने कहा है कि भक्त या गुरु के चरण ही भगवान् के चरण मान लेने चाहिए । सन्त-भक्त अथवा गुरु का शरीर भगवान् का ही शरीर है । यह भागवत का प्रमाण है ।

वाणी गुणानुकथने .... भवत्तनूनाम् । (श्रीभागवतजी १०/१०/३८)

इस श्लोक में यह कहा गया है कि भक्त का शरीर ही भगवान् का शरीर है । साक्षात् गुरुदेव का चरण भी भगवान् का ही चरण है । **'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् । मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥'**

केवल गुरु के विग्रह (शरीर) का ध्यान है तो इसे भगवान् का ध्यान माना गया है । पादसेवन साक्षात् रूप से भगवान् में घटित नहीं हो सकता है क्योंकि भगवान् सामने हैं ही नहीं । ऐसी स्थिति में गुरु चरणों में अथवा भक्तचरणों

में ही पादसेवन सम्भव है । अर्चन में भी भगवान् साक्षात् रूप से तो हैं नहीं, इसलिए मूर्ति में उनकी अर्चना कर सकते हो अथवा संत-भक्त या गुरुदेव की अर्चना कर सकते हो । इस तरह अर्चन भक्ति घटित हो सकती है । वन्दन भक्ति में जैसे अक्रूर जी को ब्रज में श्रीकृष्ण के साक्षात् चरण मिले, इस प्रकार हमें तो मिल नहीं सकते तो हम भक्त चरण, गुरु चरण अथवा मूर्ति के चरणों में वन्दना कर सकते हैं । साक्षात् तो जब भगवान् के चरण नहीं मिले हैं तो हम उनकी वन्दना कैसे कर सकते हैं ? दास्य भक्ति तो ठीक है क्योंकि दास्य तो हृदय में घटित होता है किन्तु सख्य घटित नहीं होता है । सख्य तो अर्जुन आदि का था । हम लोगों के सामने भगवान् नहीं हैं तो भक्तों के प्रति सौख्य रखा जाए । नवधा भक्ति के जो अंग साक्षात् भगवान् में घटित नहीं हो सकते, वे गुरु अथवा भक्तों में घटित होते हैं । इसीलिए भक्तमाल में यह दोहा है – 'भक्त भक्ति भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक । इनके पद वन्दन किए, नाशहिं विघ्न अनेक ॥' भक्त, भक्ति, भगवान् और गुरु एक ही हैं । जब तक इनको एक नहीं मानोगे तब तक नवधा भक्ति नहीं हो सकती । वपु माने इनका एक ही शरीर है अर्थात् इनमें जरा भी अन्तर नहीं है, एक प्रतिशत भी अन्तर नहीं है । इनके प्रति जितना तुम्हारा ऐक्य भाव होगा, उतनी तुमको सिद्धि प्राप्त होगी । इन चारों में भेद नहीं समझना चाहिए । भगवान् ने सबसे पहले यही बताया कि जीव माया को कैसे पार करे ? श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में नव योगेश्वरों से यही प्रश्न किया गया कि जीव माया को कैसे पार करे ? भगवान् तो दिखाई नहीं पड़ते हैं तो उनके प्रति प्रपत्ति कैसे होगी ? जो दिखाई नहीं पड़ता, उसमें प्रपत्ति होना कठिन है । इसलिए योगेश्वर प्रबुद्धजी ने कहा – **तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।**

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ (श्रीभागवतजी ११/३/२१)

गुरु की प्रपत्ति अर्थात् गुरु का आश्रय करो, वही एक कसौटी है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में एक मन्त्र है, उसका आशय यह है कि यदि तुम्हारा गुरु के प्रति पाँच प्रतिशत भाव है तो भगवान् के प्रति भी उतना ही भाव है । यदि गुरु का दस प्रतिशत आश्रय है तो ईश्वर का भी दस प्रतिशत आश्रय है । गुरु का साठ प्रतिशत आश्रय है तो भगवान् का भी साठ प्रतिशत ही आश्रय है । यदि गुरु का सम्पूर्ण आश्रय है तो भगवान् का भी सम्पूर्ण आश्रय है । श्रीबाबा महाराज कहते हैं कि इसको मैंने भी अनुभव किया है कि जिसका गुरुजनों के प्रति जितना अधिक आश्रय होता है, उसके अन्दर उतना ही प्रभाव, उतनी ही भक्ति व सद्गुण आ जाते हैं । पातंजलि भगवान् ने योगशास्त्र में कहा है कि तुम कुछ भी भजन मत करो, कोई साधन मत करो । यदि वीतराग महापुरुष में तुम्हारी आसक्ति है, उसके प्रति तुम्हारा मन आसक्त है तो तुम माया पार कर जाओगे । 'वीतराग' यानि जिसके अन्दर सांसारिक राग न रहे । हम जैसे लोग वीतराग कैसे हो जायेंगे क्योंकि हमारे अन्दर पैसे की तृष्णा है, सम्मान की तृष्णा है । ऐसी दशा में यदि कोई हमारे प्रति आसक्त होगा तो नष्ट हो जायेगा । वीतराग पुरुष में आसक्ति होनी चाहिए । यही बात भागवत में योगेश्वर प्रबुद्ध जी ने कहा – 'तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।' जिज्ञासु को चाहिए कि अपने कल्याण के लिए गुरु की शरण में जाए किन्तु गुरु के लक्षण होना चाहिए । ऐसा नहीं जैसे आजकल हर व्यक्ति गुरु बन रहा है । गुरु के लक्षण बताते हुए कहा गया – 'शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ।' 'शाब्दे' अर्थात् शब्द ब्रह्म यानि गुरु को सबसे पहले शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए, मनमानापन नहीं होना चाहिए । गीता, श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों के ज्ञान में चतुर होना चाहिए, नहीं तो अशास्त्रीय बातें कहकर 'गुरु' नाश कर देगा । 'परे' का अर्थ है कि केवल शास्त्र-ज्ञान का भाषण करने वाला मौखिक पण्डित न हो, गुरु को क्रियात्मक होना चाहिए अर्थात् उपासनारत 'आराधनारत' होना चाहिए । केवल शास्त्र का भाषण करने वाले तो बहुत से गुरु हैं संसार में किन्तु उनके जीवन में भगवान् की आराधना नहीं होती है । इसलिए दोनों ही बातें चाहिए । गुरु को शास्त्र ज्ञान भी हो और क्रियात्मक भी हो । तीसरा लक्षण है कि वह साधक न हो क्योंकि साधक के अन्दर तो काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों की तरंगें आयेंगी । 'ब्रह्मण्युपशमाश्रय' – भगवान् में जिसकी सब वृत्तियाँ शान्त हो गयी हों । उसके अन्दर काम, क्रोध, लोभ आदि षड् विकार न हों । मायिक विकारों की तरंगें जीव को बारम्बार भवसागर में फेंकती रहती हैं । उपरोक्त लक्षणों से सम्पन्न यदि गुरु हों तो उनके प्रति सम्पूर्ण शरणागति होनी चाहिए । ऐसा न हो कि गुरुजी कह

रहे हैं कि पूरब चलो और चेला कह रहा है कि नहीं, हम तो पश्चिम जायेंगे । गुरु की अवज्ञा करने पर नामापराध लग जाता है । सनत्सुजातसंहिता में लिखा है कि भिक्षा माँग कर लाने पर भी शिष्य को यह अधिकार नहीं है कि बिना गुरु की आज्ञा के वह भिक्षा का अन्न खाए । शिष्य को सारी भिक्षा गुरुदेव को अर्पित कर देनी चाहिए । यदि वे दें तो खाओ और नहीं देते हैं तो मत खाओ । तुम्हारे पास जो कुछ भी है, वह सब गुरु का ही है । श्रीमद्भागवत में भगवान् ने कहा है कि गुरुभक्ति के समान धर्म तो न था, न कभी होगा – **नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा ।**

तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ (श्रीभागवतजी १०/८०/३४)

ब्रह्मचारी के धर्म, गृहस्थ के धर्म, वानप्रस्थ के धर्म और सन्यासी के धर्म – चारों वर्णों और चारों आश्रमों के धर्मों से मैं उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेव की सेवा से सन्तुष्ट होता हूँ । जिसने गुरु की सेवा कर ली, उसकी तपस्या पूरी हो गयी, सभी यज्ञ पूरे हो गये, दान आदि सभी गृहस्थ धर्म पूरे हो गये, सन्यास का उपशम धर्म पूरा हो गया ।

गुरुसेवा का मतलब क्या होता है ? यह भी समझ लेना चाहिए । संसार में लोग यही समझते हैं कि साल में एक बार गुरुपूर्णिमा के दिन गुरुजी के पास गये, उनकी पूजा कर दी, उन्हें कुछ भेंट दे आये और दण्डवत प्रणाम करके चले आये । एक गुरुजी थे, उन्होंने किसी गाँव में जाकर ३३ चेले बनाये । मैंने उनसे कहा कि आपके वे चेले कभी आपका सत्संग नहीं करते, आप फिर कभी उनके पास जाओगे नहीं और वे भी आपके पास नहीं आयेंगे तो उनका कल्याण कैसे होगा ? गुरुजी ने उत्तर दिया – 'कोई बात नहीं, गुरुपूर्णिमा के दिन वे अवश्य आयेंगे और उस एक दिन में ही मुझे ३३ डेले गुड़ के प्राप्त हो जायेंगे ।' ये कोई गुरुभक्ति नहीं है । वास्तविक 'गुरुभक्ति' क्या है ? भगवान् कहते हैं –

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् । यद् वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मर्पणं गुरौ ॥ (श्रीभागवतजी १०/८०/४१)

सत्-शिष्यों का इतना ही कर्तव्य है कि वे विशुद्ध भाव से अपना सब कुछ और शरीर भी गुरुदेव की सेवा में समर्पित कर दें । 'विशुद्ध भाव' यानि निष्कपट भाव । 'विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ' - विशुद्ध भाव से सर्व अर्थ – पैसा, आत्मा – शरीर तथा सब कुछ गुरु को अर्पण कर दिया जाए । जरा-सा दुर्विचार भी मन में आ गया तो वह भी गुरु से निष्कपट भाव से कह देना चाहिए । इसका उदाहरण है कि भगवान् राम जब विश्वामित्रजी के साथ मिथिला गये थे तो गुरु की आज्ञा से उन्हें पुष्पवाटिका में फूल तोड़ने के लिए जाना पड़ा । वहाँ पर उन्होंने सीताजी के दिव्य रूप को देखा । उनसे कोई बातचीत नहीं हुई थी, केवल देखने में ही रामजी को आकर्षण हुआ कि सीताजी का रूप बड़ा सुन्दर है । इस बात को उन्होंने गुरु विश्वामित्र के पास जाकर कह दिया । ऐसा निष्कपट भाव गुरु के प्रति होना चाहिए किन्तु आजकल प्रायः यह असम्भव है । **"हृदयँ सराहत सीय लोनाई । गुर समीप गवने दोउ भाई ॥**

राम कहा सब कौसिक पाहीं । सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥" (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – २३७)

श्रीरामजी ने अपने हृदय के भाव को गुरुदेव को बता दिया; इसको कहते हैं 'निष्कपट भाव' । छल-कपट तो उन्हें बिलकुल छू ही नहीं गया था । इसीलिए उनको सिद्धि मिल गयी । सीता तो रामजी को उसी समय मिल गयी थीं, जब गुरु ने आशीर्वाद दिया था । सीता उसी समय मिल गयी थीं, जब राम निष्कपट हुए थे । गुरु के प्रति निष्कपट भाव से शरणागति होने से समस्त कर्मों की सिद्धि हो जाती है । गुरु के प्रति इस तरह का समर्पण होना चाहिए कि सब कुछ उन्हें समर्पित कर देना चाहिए । सर्वार्थात्मार्पणं का अर्थ है कि फिर एक कच्ची कौडी भी तुम्हारी नहीं है । सर्व का अर्थ है कि जो कुछ भी है मकान, जमीन-जायदाद, स्त्री-पुत्र, अपना शरीर आदि सब गुरु को अर्पण कर देना चाहिए लेकिन होना चाहिए सद्गुरु । सद्गुरु के जो लक्षण भगवान् ने एकादश स्कन्ध में बताये हैं – 'ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्' – ब्रह्म में जिसकी वृत्तियाँ शान्त हो चुकी हैं, ऐसा गुरु तुमसे क्या लेगा ? तुम्हारे अरबों-खरबों रुपये लेकर क्या करेगा क्योंकि वह तो सद्गुरु है । यदि कोई सद्गुरु है और शिष्य का उसके प्रति थोड़ा भी कपट है तो कोई भी धर्म सिद्ध नहीं होगा; चाहे तुम कितना जप कर लो, चाहे कितना तप कर लो । भगवान् ने इस बात को श्रीभागवतजी में स्वयं कहा है कि गुरुद्रोही को भगवत्प्रेम कभी नहीं मिलेगा – **भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः ।**

आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ (श्रीभागवतजी १०/३२/१९)

जितना तुम्हारे अन्दर गुरु के प्रति निष्कपट भाव है, उतना ही तुम चमकते चले जाओगे, संसार में कोई तुमको रोकने वाला नहीं है; भगवान् तक नहीं रोक सकते हैं ।

श्रीमद्भागवत के अनुसार जब असुरों की प्रबलता हुई, वे प्रबल बन गये तो सभी देवता बड़े चिन्तित हुए और ब्रह्माजी के पास गये । उस समय ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा कि तुम भले ही देवताओं के राजा हो किन्तु तुमने अपने गुरु का सत्कार नहीं किया । इसीलिए तुम्हारी शक्ति नष्ट हो गयी । इससे अधिक अपराध और कोई हो नहीं सकता । अन्य पाप तो क्षमा हो सकते हैं किन्तु गुरु का अनादर क्षम्य नहीं है । कामी हो, क्रोधी हो, कोई बात नहीं । तुमको ब्रह्मिष्ठ गुरु मिला, उसका तुमने अभिनन्दन नहीं किया । इसीलिए तुम असुरों से पराजित हुए, नहीं तो कभी नहीं पराजित हो सकते थे । गुरुद्रोही को कभी भी प्रेम नहीं मिल सकता है । ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा कि तुम गुरु के अनादर के कारण ही असुरों से हारे हो, जबकि वे निर्बल थे और तुम शक्तिशाली थे । वे निर्बल असुर विजयी हो गये । इससे पता चलता है कि गुरु का अपमान करने के कारण मनुष्य बिल्कुल शून्य हो जाता है । यही गलती पहले असुरों ने की थी, उन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य का अपमान किया था तो वे युद्ध में देवताओं से पराजित हुए और मारे गये । 'मघवा द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ।' गुरु के अतिक्रम से ही असुर पहले नष्ट हो गये थे । उसके बाद वे फिर उठे । वे समझ गये कि हमारी गलती थी । गुरु के अपराध से असुर गिरे थे और फिर गुरु की ही आराधना से वे शक्तिशाली बने । ब्रह्माजी इन्द्र से कहते हैं कि असुरों ने अपने गुरु की ऐसी आराधना की है कि तुम कहते हो कि असुर हमारा स्वर्ग छीन लेंगे किन्तु मुझे भय है कि यदि वे मेरा ब्रह्म लोक भी छीन लें तो कोई आश्चर्य नहीं है । मैं उनको रोक नहीं सकता हूँ । गुरु भक्ति में इतना चमत्कार होता है । यदि मनुष्य गिरता भी है किन्तु यदि वह गुरु की आराधना कर ले तो पहले से भी अधिक शक्तिशाली बन जाता है । बहुत से लोग समझते हैं कि यदि कोई गिर गया तो सदा गिरा ही रहेगा, यह सच नहीं है; यदि उसने गुरु की आराधना की है तो पहले से भी अधिक आगे बढ़ जायेगा ।

सम्प्रत्युपचितान् भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः । आददीरन् निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ (श्रीभागवतजी ६/७/२३)

ब्रह्माजी कहते हैं कि असुरों ने अपने गुरु शुक्राचार्य की भक्ति के साथ आराधना की, इसलिए अब ये इतने शक्तिशाली हो गये हैं कि इन्द्रलोक तो क्या मेरा ब्रह्मलोक भी छीन सकते हैं ।

त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्य मंत्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।
न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥ (श्रीभागवतजी ६/७/२४)

गुरु, गोविन्द और गाय की सेवा करने वाले का चाहे कलियुग हो, कोई भी अमंगल नहीं कर सकता है । यह एक उदाहरण है कि जीव उठा गुरु सेवा से और गिरा गुरु अपराध से । इस चरित्र में दोनों का एक साथ परिचय मिलता है । उठना और गिरना गुरुभक्ति और गुरु-अपराध से होता है । रामायण का उदाहरण देखें तो कागभुशुण्डिजी के चरित्र में भी यही मिलता है । वे जब पूर्व जन्म में मनुष्य थे तो उनके गुरुदेव बार-बार यही समझाते थे कि भक्तों से कभी द्रोह मत करना किन्तु गुरु की बात सुनकर कागभुशुण्डिजी को क्रोध आता था । ऊपर से वे गुरु को प्रणाम करते थे, उनकी सेवा करते थे किन्तु भीतर से उनसे द्रोह करते थे । गुरुदेव अपने शिष्य की कमी जानते थे किन्तु अत्यन्त दयालु होने के कारण वे कभी शिष्य पर क्रोध नहीं करते थे । कागभुशुण्डि को गुरुदेव का उपदेश अच्छा नहीं लगता था । एक दिन गुरुदेव शिवमन्दिर में आये तो कागभुशुण्डि ने द्रोह के कारण उनको प्रणाम भी नहीं किया । गुरुदेव दयालु थे, उन्हें तो बुरा नहीं लगा किन्तु भगवान् शंकर क्रोधित हो गये । उन्होंने कागभुशुण्डि से कहा कि मैं जानता हूँ कि तेरे दुर्व्यवहार पर भी गुरुदेव क्रोधित नहीं हैं किन्तु तू बड़ा दुष्ट है और मैं तुझे दण्ड दूँगा ।

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा । अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा ॥ (रामचरितमानस, उत्तर काण्ड – १०७)

जो नीच मनुष्य गुरुदेव से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़कर वहाँ की यातनाओं को भोगते हैं । भले ही ये लोग कितना भी साधन त्याग-वैराग्य आदि कर लें किन्तु गुरु द्रोह के कारण इनका सारा साधन नष्ट हो जाता है । करोड़ों युगों तक नरक भोगने के बाद फिर करोड़ों जन्मों में उन्हें तिर्यक योनि में जन्म लेना पड़ता है, अनन्त वर्षों तक सर्प बनना पड़ता है । सर्प अपने विष से स्वयं जलता रहता है । महादेवजी ने कागभुशुण्डि को यही सब कष्ट भोगने का कठोर शाप दे दिया । महादेव के भयंकर शाप को सुनकर परम दयालु गुरुदेव ने अपने शिष्य के कल्याण के लिए शिवजी की बहुत स्तुति की । उनकी स्तुति को सुनकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कागभुशुण्डि को क्षमा कर दिया । गीता में भी भगवान् ने कहा है – **'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।'** गुरुदेव के पास जाकर पहले उनके चरणों में प्रणिपात करना, ऐसा नहीं कि केवल दण्डवत प्रणाम कर लिया । प्रणिपात जैसे ईश्वर के प्रति होता है, वैसा ही गुरु के प्रति भी होना चाहिए । यह गीता में भगवान् की आज्ञा है । प्रणिपात अर्थात् शरणागति नहीं है, मनमानापन है तो कोई लाभ नहीं होगा । भगवान् कहते हैं कि प्रणिपात के बाद गुरुदेव की सेवा करना चाहिए । गुरुगृह में जाकर सेवा करना । वहाँ जाकर स्वामी मत बन जाना । महाभारत में तो यहाँ तक लिखा है कि गुरुगृह के तो कुत्ते तक को पूज्य मानना चाहिए । बाकी अन्य लोगों में तो पूज्यता का भाव रखना ही चाहिए । महाभारत के अनुसार ब्रह्मचर्य क्या है ? गुरुसेवा ही ब्रह्मचर्य है । इससे बड़ा ब्रह्मचर्य कुछ नहीं है । भागवत के एकादश स्कन्ध में राजा निमि के प्रश्न का उत्तर देते हुए योगेश्वर कविजी कहते हैं – **भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।**

तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ (श्रीभागवतजी ११/२/३७)

जीव अनादिकाल से भय से ग्रसित है । भय अविद्या की पाँचवीं गाँठ है । पहली चीज है कि जीव भगवान् से विमुख हुआ, दूसरी स्थिति है कि भगवान् की स्मृति चली गयी, तीसरी स्थिति है कि विपर्यय अर्थात् विपरीत ज्ञान हो गया, विपरीत ज्ञान में मनुष्य शरीर को ही आत्मा समझ लेता है । इसके बाद चौथी स्थिति में द्वितीयाभिनिवेश होता है और तब पाँचवीं स्थिति में भय लगता है । हम जैसे लोग अविद्या की पाँचवीं गाँठ पर पहुँच चुके हैं । हर समय हमें काल का, विपत्तियों का भय घेरे रहता है । इस स्थिति में पहुँचने पर भी इलाज हो सकता है और इलाज यही है कि भगवान् के भजन के साथ ही गुरु को भी भगवान् और आत्मा समझना । बस, इतने से ही तुम्हारा सब भय समाप्त हो जाएगा । अविद्या की समस्त स्थितियों से मुक्ति मिल जाएगी । श्रीबाबामहाराज कहते हैं कि मेरा भी यह अनुभव है कि जिसका गुरुजनों के प्रति जितना निष्कपट भाव रहा, वह अध्यात्म में उतना ही आगे बढ़ता गया । अध्यात्म में वही आगे बढ़ता है, जिसकी गुरुदेव में निष्कपट शरणागति होती है । एक आदमी कह रहा था कि अमुक व्यक्ति को मैंने एक साल पहले देखा था और एक साल के बाद उसमें इतना परिवर्तन कैसे हो गया अर्थात् अध्यात्म में वह इतना परिपक्व कैसे हो गया ? उसका कारण यही था कि उस व्यक्ति का गुरुजनों के प्रति निष्कपट भाव था । गुरुजनों के प्रति यह निष्कपट भाव एकदम से चमत्कार प्रदान कर देता है । सूरदासजी का एक पद है, अगर तुम्हारे मन में निष्कपट शरणागति है तो तुमको वैसे ही पचासों सेवक मिल जायेंगे । **"को-को न तर्‌यो हरिनाम लिए । प्रभु ते जन जन ते प्रभु बरतत जाकी जैसी प्रीति हिए ॥"** यह हमने देखा है कि उससे प्रेम करने वाले, उसका अनुगमन करने वाले अपने आप बढ़ते रहते हैं, चाहे उसके पास पैसा बिलकुल भी नहीं है, फिर भी उसके अनुगामी, उसके समर्थक लोग बढ़ते रहते हैं । यह सब निष्कपट भाव का चमत्कार है । न उसके पास विद्या है, न कोई लौकिक योग्यता है, न धन है किन्तु निष्कपट भाव ही ऐसा गुण है जो मनुष्य को परमार्थ में परिपक्व बनाता है और यह गुण नहीं है तो लोग लुढ़क जाते हैं और ऐसा लुढ़कते हैं कि उनका पता ही नहीं चलता कहाँ चले गये ? समृद्ध बनकर ऐसे लोग विरोध करते हैं किन्तु उनके विरोध से कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह विरोध करने वाला बड़ा प्रभावशाली है किन्तु उसका पतन हो जाता है ।

श्रीकूरेशजी की गुरुभक्ति

श्वेताश्वतर-उपनिषद (६/२३) में कहा गया है – **'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।'** – जितनी प्रतिशत भक्ति 'गुरु' में होती है, उतनी ही प्रतिशत भक्ति देवता अर्थात् भगवान् में होती है । उसके हृदय में परमार्थ का सारा विषय बिना पढ़े ही आ जायेगा और उसके सम्पर्क में जितने भी लोग आयेंगे, वे सभी पवित्र हो जायेंगे, चाहे वह बिलकुल भी पढ़ा-लिखा नहीं है । इसका कारण यही है कि उसकी अपने गुरुदेव के प्रति निष्कपट भक्ति है । इस कारण उसके हृदय में बिना पढ़े ही सभी बातें प्रकाशित होती रहती हैं । यह उपनिषद् का प्रमाण है ।

अब भक्तमाल का प्रमाण देखिये । दक्षिण भारत में श्रीकूरेशाचार्यजी बहुत बड़े गुरुभक्त हुए हैं । कूरपुर में इनकी रियासत थी, जो काँची से दो कोस दूर है । वहाँ के ये राजा थे । वे लक्ष्मी से बड़े सम्पन्न थे और साथ ही बहुत बड़े विद्वान् भी थे । ये बड़े ही विचित्र राजा हुए । सुबह जब मन्दिर में भगवान् की मंगला आरती होती थी तो राजा कूरेश स्वयं मन्दिर में जाते थे । उनका आदेश था कि मेरे राज्य में कोई भी व्यक्ति ऐसा न हो जो सुबह मन्दिर में मंगला आरती का दर्शन न करे और जो व्यक्ति मंगला आरती के समय सोता रहता है, उसको मेरे नगर से बाहर निकाल दिया जाए । उनके आदेश से नगर की सारी प्रजा मंगला आरती का दर्शन करने मन्दिर में जाती थी और उस समय मन्दिर में हजारों घंटे बजते थे । मन्दिर के घंटों की आवाज दो कोस दूर स्थित काँचीपुर तक जाती थी । काँचीपुर में भगवान् वरदराजजी का मन्दिर था । कूरेशजी ऐसे राजा हुए कि उनके राज्य में दिन-रात भगवान् की आराधना होती रहती थी । जब मनुष्य गुरुदेव की निष्कपट शरणागति करता है, तब उसके मन में ऐसे ही भाव उत्पन्न होते हैं, बाकी लोग तो यही सोचते हैं कि कैसे हमें धन की प्राप्ति हो, कैसे समाज में हमारा प्रभाव बढ़े और जिसके हृदय में निष्काम भक्ति है, वह सोचता है कि कैसे भगवान् की आराधना बढ़े ? कैसे अधिक से अधिक भगवन्नाम का कीर्तन हो । मन की वृत्तियों का पता पड़ता रहता है । जैसे किसी समय कोई आदमी बहुत अच्छी भक्ति करता था किन्तु आज उसकी शरणागति चली गयी तो उसकी वृत्ति में भेद हो गया । जिसकी गुरुदेव में शुद्ध शरणागति होती है, वह यही सोचता है कि कैसे हर समय आराधना होती रहे । इसके अतिरिक्त वह कुछ और सोचता ही नहीं है ।

अस्तु, कूरेशजी के राज्य में हर समय आराधना होती रहती थी और हर समय भक्तों के लिए पंगत होती रहती थी । हर समय, यहाँ तक कि रात को बारह बजे भी भोजन का प्रबन्ध रहता था । उन्हीं दिनों काँचीपुर में वरदराज भगवान् के रूप में साक्षात् लक्ष्मी-नारायण भगवान् मन्दिर में विराजते थे । एक दिन लक्ष्मीजी ने भगवान् से पूछा कि बहुत दूर से इतने सबेरे बड़े जोर की ध्वनि कहाँ से आती है ? (जहाँ आराधना में सैकड़ों भक्त कीर्तन में नाचते-गाते हैं, वहाँ पर लाउड स्पीकर की आवश्यकता नहीं होती, अपने-आप ही आराधना की शक्ति से ध्वनि दूर तक जाती है । जहाँ आराधना में जितने अधिक भक्त बढ़ेंगे, उतना ही समाज को लाभ होता है । हम जैसे निकम्मे लोग चिढ़ते हैं, ईर्ष्या करते हैं कि वहाँ आराधना में दस व्यक्ति कैसे बढ़ गये; जबकि भक्त सुखी होता है कि जितने अधिक आराधक बढ़ जाएँ, उतना ही समाज का कल्याण होगा ।) अस्तु, लक्ष्मीजी के पूछने पर भगवान् ने बताया कि कूरपुर के राजा कूरेश का ऐसा प्रताप है कि उसके नगर के सभी लोग दिन-रात मेरी आराधना करते हैं । लक्ष्मीजी ने कहा – 'प्रभो ! ऐसे भक्त को तो यहाँ काँचीपुर में बुलाइए ।' भक्ति का ऐसा चमत्कार होता है कि स्वयं भगवान् अपने भक्त को देखना चाहता है । इस बात का भागवत में प्रमाण है कि ध्रुवजी ने जब मधुवन में भगवान् के दर्शन के लिए उत्कट तप किया तो स्वयं भगवान् उनका दर्शन करने के लिए मधुवन में गये । वहाँ तो भगवान् स्वयं अपने भक्त का दर्शन करने गये और यहाँ लक्ष्मीजी भक्त को अपने मन्दिर में बुला रही हैं और भगवान् से कह रही हैं कि ऐसा भक्त अभी तक हमारे यहाँ नहीं आया । लक्ष्मीजी की अभिलाषा को देखकर भगवान् ने कांचीपूर्णजी को कूरेशजी को बुलाने के लिए भेजा । काँचीपुर से कांचीपूर्णजी कूरपुर गये और राजदरबार में पहुँचकर कूरेशजी से कहा कि आपको काँचीपुर में भगवान् वरदराज ने बुलाया है । कूरेशजी ने

पूछा कि उन्होंने क्या कहा है ? कांचीपूर्णजी बोले कि प्रभु ने आपको अभी बुलाया है । कूरेश जी ने पूछा – 'क्यों ?' कांचीपूर्ण जी बोले – 'आपको जगन्माता लक्ष्मीजी बुला रही हैं । आपका बहुत बड़ा सौभाग्य है ।' कूरेशजी ने कहा – 'अभी नहीं आऊँगा ।' कांचीपूर्णजी ने आश्चर्यचकित होकर कहा – 'अरे ! जगन्माता लक्ष्मी बुला रही हैं और तुम अभी नहीं आओगे ?' कूरेशजी ने कहा – 'हाँ, मैं कृतघ्न हूँ, संसार का सबसे बड़ा पापिष्ठ हूँ, मेरा अन्तःकरण गन्दा है, मैं दूसरों को ठगता रहता हूँ कि मैं भक्त हूँ और कहाँ ब्रह्मा-शिव आदि देवों से वन्दित जगन्माता लक्ष्मी । मैं उनके पास कैसे जा सकता हूँ ?' कांचीपूर्णजी ने कहा – 'आपको जगन्माता बुला रही हैं ।' कूरेशजी बोले – 'ऐसे नहीं आऊँगा । मैं पहले गुरुचरणों में स्नान करके आऊँगा । अभी मैं माता लक्ष्मी के पास जाने के योग्य नहीं हूँ ।' ऐसा कहकर कूरेशजी उठे और सर्वस्व लुटा दिया, फिर बोले – 'अब मैं गुरुदेव के पास जा रहा हूँ, अब तो राज्य और सम्पत्ति आदि समाप्त हो गये हैं । गुरु के पास जाऊँगा और फिर राज्य तथा सम्पत्ति में ध्यान जायेगा तो मैं गुरु की सेवा कैसे करूँगा ? गुरुदेव के पास जा रहा हूँ तो सर्वात्मभाव से जाऊँगा । न राज्य रहेगा, न धन रहेगा; ये (सांसारिक ऐश्वर्य इत्यादि) सब प्रपंच है ।' ऐसा कहकर कूरेशजी ने अपना सर्वस्व लुटा दिया । इनकी पत्नी बोली – 'मैं भी आपके साथ गुरुदेव के पास चलूँगी ।' कूरेशजी बोले – 'चलो, गुरुचरणों में सबका अधिकार है लेकिन चलना इस शर्त पर है कि सर्वात्मभाव से चलना है, सब कुछ छोड़कर चलना है । कुछ भी चिन्तन यदि इधर-उधर रहा तो गुरुदेव की सेवा कैसे होगी ?' इनकी पत्नी ने अपने पास एक स्वर्णपात्र छिपा रखा था, उसे कूरेश जी ने फिंकवा दिया और बोले – 'और कुछ भी तुम्हारे पास हो तो बता देना, नहीं तो मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखूँगा । गुरुदेव के पास सब कुछ छोड़कर चलो ।' उस समय कूरेश जी के गुरुदेव रामानुजाचार्य जी ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखना चाहते थे और उसके प्रमाण के रूप में पूर्वाचार्य बोधायनजी द्वारा रचित ग्रन्थ 'बोधायन वृत्ति' की आवश्यकता थी । वह ग्रन्थ कश्मीर में शारदा पीठ में था । उन दिनों कश्मीर सनातन धर्म का केन्द्र था । जब रामानुजाचार्य जी कश्मीर गये तो वहाँ के विद्वानों ने साम्प्रदायिकता के कारण वह ग्रन्थ देने से मना कर दिया । हर सम्प्रदाय वाला चाहता है कि हमारे सम्प्रदाय का गौरव न गिर जाए । शारदा देवी ने रात के समय वह ग्रन्थ लाकर रामानुजाचार्य को दे दिया और कहा कि आप यहाँ से शीघ्र ही चले जाओ, नहीं तो यहाँ के लोग आपको मार डालेंगे । रामानुजाचार्य जी ग्रन्थ लेकर रात को ही कश्मीर से भाग गये । उस समय उनके शिष्य कूरेश जी भी साथ में थे । शारदा पीठ के पण्डितों ने पुस्तकालय का निरीक्षण किया तो उन्हें वह ग्रन्थ नहीं मिला । वे लोग समझ गये कि दक्षिण भारत से आये महात्मा ही इस ग्रन्थ को चुराकर ले गये हैं । उन लोगों ने पीछा किया और एक महीने बाद रामानुजाचार्य जी को पकड़ा । स्वामी जी ने बहुत कहा कि हम भाष्य लिखकर ग्रन्थ वापस कर देंगे किन्तु पण्डितों ने उनकी बात नहीं मानी और बलपूर्वक ग्रन्थ छीनकर ले गये । इससे रामानुजाचार्य जी को बहुत कष्ट हुआ और वे रोने लगे । कूरेश जी बोले – 'गुरुदेव ! रोते क्यों हैं ? मैंने उस ग्रन्थ को पूरा कण्ठस्थ कर लिया है ।' गुरुदेव ने पूछा – 'कैसे कण्ठस्थ किया ?' कूरेश जी बोले – 'कश्मीर से चलने के समय से प्रत्येक रात्रि को आपके सो जाने पर मैं उस ग्रन्थ का पाठ किया करता था और ऐसा करने से मुझे समस्त ग्रन्थ कण्ठस्थ हो गया ।' यह सुनकर रामानुजाचार्य जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कूरेश जी को अपने हृदय से लगा लिया । इस घटना से पता चलता है कि भावना के कारण शिष्य तो अपने गुरु का भी गुरु बन गया । श्रीरंगम् आने पर कूरेश जी ने अपनी स्मृति के आधार पर पूरा ग्रन्थ लिख दिया । आगे चलकर उसी के आधार पर रामानुज जी ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य की रचना की ।

उन दिनों दक्षिण भारत में शैव और वैष्णवों का आपस में बहुत बड़ा झगड़ा था । वैष्णवों के विरोधी शिव भक्त चोल नरेश ने सुना कि रामानुज वैष्णव धर्म की स्थापना करने के लिए भाष्य लिख रहा है और भविष्य में वह वैष्णव धर्म का प्रचार करेगा तो उसने कहा कि मैं उसको जबरन शैव बनाऊँगा । उसने रामानुज जी के पास शास्त्रार्थ करने के लिए निमन्त्रण भेजा । उस समय कूरेश जी ने रामानुजाचार्य जी से कहा कि आप चोल नरेश के दरबार में मत जाइए । वह निश्चित ही आपका वध कर देगा । आपके बदले मैं उसके दरबार में जाऊँगा । कूरेश जी ने रामानुज का वेष बना

लिया और चोल नरेश के दरबार में पहुँचे । उनके साथ महापूर्ण स्वामी भी थे । शैव विद्वानों के साथ कूरेश जी का शास्त्रार्थ हुआ और भगवान् की कृपा से वे विजयी हुए । चोल नरेश बहुत क्रोधित हुआ और उसने आदेश दिया कि इन दोनों की आँखें निकाल दो । कूरेशजी और महापूर्ण स्वामी की आँखें निकलवा दी गयीं । अब ये दोनों अंधे होकर अपने गुरुदेव के पास गये । महापूर्ण स्वामी की रास्ते में ही मृत्यु हो गयी । जब कूरेश जी रामानुजाचार्य जी के पास पहुँचे तो उन्होंने पूछा – 'बेटा ! तुम्हारे साथ ये क्या हुआ ?' कूरेश जी बोले – 'गुरुदेव ! बड़ी प्रसन्नता की बात है कि मेरी इच्छा पूर्ण हो गयी । यदि आप वहाँ जाते तो निश्चित ही आपकी आँखें निकलवा दी जातीं । इसीलिए मैं वहाँ गया था ।' गुरुदेव रोने लगे और कूरेश जी से बोले – 'तुम वरदराज भगवान् के पास जाओ और उनसे अपने नेत्र माँग लो ।' कूरेश जी निष्काम भक्त थे, अतः बोले कि मैं प्रभु से माँगूं ? आँख तो तुच्छ चीज है, मैं प्रभु से ऐसी तुच्छ वस्तु कैसे माँग सकता हूँ ? मैं अन्धा रह लूँगा किन्तु भगवान् से कुछ माँगूँगा नहीं । गुरुदेव समझ गये कि यह तो पूर्णतया निष्काम भक्त है । यह आँख तो क्या, मृत्यु संकट उपस्थित होने पर भगवान् से जीवन दान भी नहीं माँगेगा । गुरुदेव बोले – 'अच्छा, तुम भगवान् के पास जाओ और मेरी आज्ञा से अपने लिए नेत्र माँगो ।' गुरु की आज्ञा से कूरेश जी वरदराज भगवान् के मन्दिर पहुँचे । भगवान् लक्ष्मी-नारायण ने देखा कि यह अन्धा हमारे मन्दिर में खड़ा है । उन्होंने पूछा – 'कूरेश ! क्या बात है ?' कूरेश जी बोले – 'मेरे गुरुदेव की दो वस्तुयें खो गयी हैं (अर्थात् आँखें मेरी नहीं थीं क्योंकि मैंने तो अपना शरीर गुरु को समर्पित कर दिया था), उन्हें आप दे दीजिये ।' लक्ष्मी-नारायण भगवान् कूरेशजी की गुरुभक्ति को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी कृपा से कूरेश जी को दिव्य नेत्र प्राप्त हो गये । जब नेत्र प्राप्त हो गये तो कूरेश जी ने भगवान् का दर्शन नहीं किया । वे सीधे गुरुदेव के पास गये और बोले कि इन नेत्रों से प्रथम दर्शन मैं गुरुदेव का करूँगा, उसके बाद भगवान् का दर्शन करूँगा । इसलिए उन्होंने प्रथम दर्शन गुरुदेव का ही किया ।

गीता, रामायण, भागवत और भक्तमाल के इन प्रमाणों से पता चलता है कि भगवान् तो हमारे सामने नहीं हैं किन्तु यदि कोई संत-भक्त अथवा गुरुदेव का आश्रय ग्रहण करता है तो वह साक्षात् भगवान् का ही आश्रय होता है और यदि संत-भक्त या गुरु का आश्रय नहीं ग्रहण किया तो हम जैसे विषय लोलुप प्राणी जीवन भर इन्द्रिय तृप्ति के लिए ही संसार में भटकते रहते हैं ।

अनुपम-उपकारी 'गौमाता'

भावाभिव्यक्ति – परम गौ-सेवी संत
'श्रीब्रजशरणजीमहाराज'
श्रीमाताजी गौशाला, श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसम सरः । इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ (यजुर्वेद २३/४८)

यजुर्वेदकालीन उक्त मन्त्र निर्देश करता है कि जिस ब्रह्मविद्या द्वारा मनुष्य परम सुख को प्राप्त करता है; उसकी सूर्य से उपमा दी जा सकती है । उसी प्रकार द्युलोक की समुद्र से तथा विस्तीर्ण पृथ्वी की इन्द्र से-उपमा दी जा सकती है, किन्तु प्राणीमात्र के अनन्त उपकारों को अकेली सम्पन्न करने वाली गौमाता की किसी से उपमा नहीं दी जा सकती । गौ निरुपमा है । वास्तव में गौ के समान उपकारी जीव मनुष्य के लिये दूसरा कोई भी नहीं है; उसके विभिन्न स्वरूपों द्वारा प्राणीमात्र का जो हित हो रहा है, वैसा किसी अन्य जीव द्वारा नहीं हो सकता । ऋग्वेदकालीन ऋषियों को गोवंश के उपकारों का यहाँ तक ज्ञान हो चुका था कि वे गौओं को चतुष्पाद प्राणियों में श्रेष्ठ ही नहीं, प्रत्युत अपनी समस्त कामनाओं को परिपूर्ण करने वाली माता मानते थे । गौओं के विषय में महात्मा बुद्ध के उद्गार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । उन्होंने सम्यक्

रीति से गोमाता के महत्व को समझा और उसका पर्याप्त प्रचार किया था, उनके हृदय में गौओं के प्रति अटूट श्रद्धा थी । गौ के विषय में उनकी भावना का वर्णन खुद्दक-निकाय-अन्तर्गत सुत्तनिपातके "ब्राह्मण धम्मिय सुत्त" तथा "अट्ठ कथा" में विशेष रूप से पाया जाता है । इससे यह परिलक्षित है कि महात्मा बुद्ध ने जनता में गौ के प्रति दया की भावना का पर्याप्त प्रचार किया था और गौ-हिंसा को रोकने का भागीरथ प्रयत्न किया था । मुसलमानों के पैगंबर हजरत मुहम्मद ने गाय के दूध, घी तथा मक्खन के गुणों को सुविस्तृत ढंग से अभिहित किया है तथा बड़े मार्मिक शब्दों में निर्देश किया है कि गौ का माँस स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकर है । वे कहते हैं कि 'खुदा ने गाय में बहुत-से गुण इकट्ठे किये हैं और उनका मुकाबला दुनिया का कोई जीव नहीं कर सकता । गाय का दूध दवा है, उसका मक्खन शिफ़ा है, पर उसके गोश्त में बीमारी मौजूद है । रसूल इस्लाम 'गौ' का कितना महत्त्व समझते थे, यह हदीसों के अध्ययन से स्पष्ट प्रकट होता है । अथर्ववेद्कालीन एक ऋषि गौ के विषय में बहुत ही यथार्थ कहते हैं – **"यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा सहीलुका । वशा पर्जन्यपत्नी देवान् अप्येति ब्रह्मणा ॥** (अथर्ववेद १०/१०/६) भाव यह कि गौ यज्ञपदी है अर्थात् गो यज्ञशाला-जैसे पवित्र स्थान में रखने योग्य है । गौ इराक्षीरा है अर्थात् दुग्धरूप सात्त्विक भोजन देने वाली है । गौ स्वधाप्राणा है अर्थात् प्रत्येक प्राणी को अपना अस्तित्व धारण किये रहने के लिये यथेष्ट सहायता देने वाली है । 'गौ' महीलुका है अर्थात् पृथ्वी की उर्वरा बनाये रखने वाली है । 'गौ' पर्जन्य पत्नी है अर्थात् पर्जन्य की सहायता से उत्पन्न होने वाले तृणादि को खाकर हृष्ट-पुष्ट रहने वाली है । उक्त सब गुणों द्वारा 'गौ' जनता का अपार उपकार कर; उन उपकारों के पुण्य-बल से; अपने-आपको पशुयोनि द्वारा ही देवलोक की अधिकारिणी बनाती है । भगवान् मनु ने गोवंश के अनुपम उपकारों को मुक्त हृदय से स्वीकार किया है । गोशाला का सुन्दर रूप से सञ्चालन करने के लिये उन्हें तीन भागों में विभक्त किया है—एक में बूढ़े-अपाहिज, जो कार्य करने योग्य न हों; दूसरे में दूध देने वाली गायें तथा हल में चलने योग्य बैल, तीसरे में बछड़े-बछियाँ । वैश्य कुल को निर्देश करते हुए आपने लिखा है – **पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥** अर्थात् सर्वप्रथम यथाविधि गो-परिपालन कर कृषि का सम्पादन करना चाहिये । कृषि द्वारा उत्पन्न किये हुए भोज्यान्नों आदि का व्यापार कर देशको धन-धान्य सम्पन्न बनाये रखना चाहिये । उक्त साधनों द्वारा उत्पन्न किये हुए धन को दान तथा विद्या-प्राप्ति में व्यय करते रहना चाहिये । गोवंश की उपकार-परम्परा को चिरस्थायी एवं सार्वभौमिक करने के विचार से सन्ध्या की प्रार्थना तथा प्रातःस्मरण तक में उन्हें सम्मिलित किया गया है । पाठकवृन्द ! तनिक गौ के उपकारों पर दृष्टिपात कीजिये । अति प्राचीन काल से गौ ने मनुष्य-जाति को सुखी एवं समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण कार्य किया है । जिन शुद्ध, पवित्र एवं परम पौष्टिक भोज्यान्नों को खा-पीकर जनता बलशालिनी बनती है, वे प्रायः गोमाता द्वारा ही प्राप्य हैं । यही कारण है कि भारत वर्ष में सर्वत्र हिंदुओं में गौ परम पूज्य मानी जाती है । खेद है कि ऋग्वेदकालीन विद्वान कृतज्ञतापूर्वक गोवंश का जितनी उत्तमता के साथ परिपालन करते थे, अज्ञानवश आज हम उन्हें अवहेलना की दृष्टि से निहार रहे हैं । मनुष्य के लिये सर्वोत्तम आहार अर्थात् दूध गौ ही देती है । जिन पौष्टिक तत्वों से लालित-पालित होकर शिवाजी तथा प्रताप-सरीखे वीर उत्पन्न हुए, वह गौ की ही महिमा है । गौ अन्न, बल, रूप और सुख देने वाली है, यह जानकर और दैनिक जीवन में अनुभव करने के पश्चात् ही पूर्व पुरुषों ने गौ की ऐसी महिमा वर्णन की है । जैसे माता-पिता हमारे हैं, इसी भाँति गौ भी हमारी हितकारिणी है । वास्तव में गौ के समान उपकारी जीव मनुष्य के लिये दूसरा नहीं है । गोरक्षा हिंदू-धर्मके अन्तर्गत है । प्राचीन आर्यों ने गोवंश की रक्षा के लिये अमित शक्ति का प्रयोग किया है । राज्य शक्तियाँ गोरक्षा का कार्य शासन का प्रधान कर्तव्य मानकर करती थीं, उन्हें पग-पग पर गौ की उपयोगिता प्रतीत होती थी, इसी कारण उन्होंने निर्देश किया है – **धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा । एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥ जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च । ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥** (महाभारत, अनुशासनपर्व – ८३/ १८-१९)

अर्थात् गौएँ अपने दूध और घी से जनता का भरण-पोषण करती हैं तथा उनके बच्चे कृषक वर्ग की विशेष रूप से सहायता करते हैं । उनकी सहायता से नाना प्रकार के सात्विक भोज्यान्न उत्पन्न किये जाते हैं । उन्हीं की सहायता से

जनता के देव तथा पितृकर्म सम्पन्न होते हैं । भावार्थ यह है कि मनुष्यमात्र को अपना जीवन बनाये रखने के लिये जिन सात्विक भोजनों की परम आवश्यकता होती है, उन्हें उत्पन्न करने में गोवंश व्यापकरूप से सहायक होता है । इसी कारण आर्यों ने गोरक्षा का आग्रह किया है तथा गोरक्षा को धर्म के अन्तर्गत माना है । प्राचीन भारत के मनीषियों ने गोरक्षा तथा गोमहिमा का इसी कारण इतना समर्थन किया है; क्योंकि उनकी सहायता से भारत की जनता को परम पौष्टिक खाद्य सामग्री सहज ही में उपलब्ध हो जाया करती थी । गोशालाएँ कैसी हों, उनकी व्यवस्था का ढंग, चारे का प्रबन्ध, गोवंश के गुणों की रक्षा एवं अभिवृद्धि के लिए किस प्रकार के साँड़ों की आवश्यकता है, इन विविध प्रश्नों पर ऋषियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं । एक स्थान पर कहा गया है – **"तत्र दिव्यान्यरण्यानि दिव्यानि भवनानि च । यत्र वृक्षा मधुफला दिव्यपुष्पफलोपगाः ॥ वरुणादित्यसङ्काशैः भान्ति यत्र जलाशयाः ।"** अर्थात् गोमाता के निवास करने के स्थान अत्यन्त दिव्य बनने चाहिये, जिनमें वे सुख से रह सकें । आस-पास चरने के लिए पुष्ट चारे का प्रबन्ध हो । गोशालाओं के समीप यत्र-तत्र मीठे फल एवं सुगन्धित पुष्पों के वृक्ष भी होने उचित हैं । इससे स्पष्ट है कि राजा-महाराजा गोधन की अभिवृद्धि में सदैव निरत रहते थे तथा उनके परिपालनार्थ जो कुछ भी उत्तम हो सकता था; उसे अवश्य करते थे । आज हम जिधर दृष्टि करते हैं - अशान्ति, दुर्भिक्ष एवं ह्रास ही पाते हैं । हमारे शरीर दुर्बल एवं कृशकाय हो गये हैं । हमारे देश की मृत्यु संख्या वृद्धि पर है । नाना प्रकार के शारीरिक रोग शरीर में घर कर गये हैं, हम अस्थिपिञ्जरवत् शेष रह गये हैं । यह बात सर्वविदित है कि बच्चों के शारीरिक विकास के निमित्त दूध अनिवार्य तत्त्व है । बिना गौ-दुग्ध के न उनकी अस्थियाँ बढ़ सकती हैं और न नेत्रों में ज्योति ही आ सकती है । हमारे देश में लोगों की औसत आयु निरन्तर घटती ही जा रही है, इसका प्रधान कारण अपवित्र खाद्य सामग्री ही है । गौवंश के अभाव में जो भक्तिमय सात्त्विकता है, वह घटती जा रही हैं । जिन गौभक्तों ने भारत के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया है, उनका कर्त्तव्य है कि वे किसानों व भारतवासियों को गाय की उपयोगिता के बारे में बताएँ तथा गोवंश की महिमा समझाते हुए उसके द्वारा क्या-क्या उपकार हो सकता है, इसे अच्छी तरह स्पष्ट करें । साथ ही गोवंश के भीषण क्षय को रोकने का आन्दोलन करें । देश में गोपालन के लिये आदर्श गोशालायें स्थापित करें । 'गौमाता' भारतीय संस्कृति की जननी है । जो गौभक्तजन गायों की सेवा-आराधना में उत्साहपूर्वक अग्रसर होंगे, उन्हें श्रीभगवान् की कृपा से अवश्य ही सच्ची सफलता मिलेगी ।

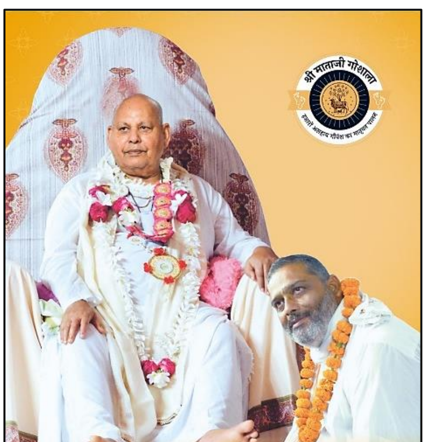

श्रीगुरु-आराधना

बाबाश्री के सत्संग (१०,११/७/२००८) से संकलित

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

(श्रीगीताजी १३/७-११)

गीता जी के इन श्लोकों का सामान्य अर्थ तो यही है कि जिस साधक को सत् का ज्ञान हो जाता है , उसके शारीरिक, ऐंद्रिक, मानसिक, बौद्धिक व्यवहार में, इन श्लोकों में बताए गये सब लक्षण सहज ही दिखने लगते हैं अर्थात् सही ज्ञान होने पर व्यवहार अपने आप सही हो जाता है । यदि कोई साधक बहुत लम्बे समय से लगातार श्रद्धापूर्वक विशुद्ध संतों का सत्संग सुन रहा है और वह यह जांचना चाहता है कि सत्संग में सुने ज्ञान के सिद्धांतों को उसकी वुद्धि कुछ धारण भी कर रही है या नहीं अर्थात् उसके जीवन में भी सत्संग के प्रभाव से कुछ सुधार हो रहा है या नही ? इसकी जाँच के लिए ही भगवान् ने ज्ञान के ये बीस लक्षण कहे हैं क्योंकि जितने अंश में हमारी बुद्धि ज्ञान

को धारण करती जाएगी, उतने ही अंश में हमारे व्यवहार में भी ये सब गुण अपने-आप आने लगेंगे । अत: ज्ञान के इन लक्षणों को मापक बना कर स्वयम् की जाँच करना परम आवश्यक है । वास्तविक बात यही है कि सत्संग में मिले विशुद्ध ज्ञान का ठोस लाभ उसे सुनकर, व्यवहार में लाने से ही मिलता है अन्यथा सुनते-सुनते तो हमारे जन्म बीत गये परन्तु अब तक हमारी बात नहीं बनी ।

ये तो हुई इन श्लोकों के सामान्य अर्थ की बात किंतु बाबाश्री ने इन्हीं श्लोकों में से ही कई नवीन और गहन भावार्थों को प्रकट किया है और उन्हीं में से एक भावार्थ है - आचार्य उपासना यानि सद्गुरु की शरणागति । बाबाश्री ने बताया कि मुख से तो हम बहुत ही आसानी से कह देते हैं कि हे गुरुदेव ! हम आपकी शरण में हैं लेकिन केवल मुख से बोलने से शरणागति नहीं होती, पहले गुरु शरणागति के लक्षणों को जानो, उनसे स्वयं की जाँच करो । तब तुम स्वयं ही जान जाओगे कि तुम्हारा मन और बुद्धि कितने अंश में सद्गुरु की शरण में है और कितने अंश में संसार की ।

सद्गुरु की शरणागति कोई साधारण वस्तु नही है; जो साधक सही रूप में सद्गुरु की शरण ले लेते हैं, उन्हें बिना कोई साधन किए ही अपने आप सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति हो जाती है । बड़े-बड़े गुरुभक्तों ने सद्गुरु की शरणागति की इसी महिमा को अपने जीवन में अनुभव किया और स्पष्ट रूप से अपनी वाणी में ग़ाया भी है । महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर ने अपने एक मराठी अभंग में श्री गुरु शरण की महिमा को इस प्रकार गाया है – 'सद्गुरूवांचूनी संसारी तारक , नसेचि निष्टंक आण कोणी ।' एकमात्र सद्गुरु की शरण ही हमें इस दुखद संसार से तार सकती है, उसके बिना और कोई उपाय नहीं है । इस प्रकार संतों ने गुरु शरणागति को भक्ति मार्ग की सर्वोच्च वस्तु माना है । "आचार्य उपासना" पर बाबाश्री द्वारा की गई सत्संग व्याख्या निम्नलिखित है :- बाबाश्री ने सबसे पहले श्रीगीता जी के १३ वें अध्याय के ७ से ११ तक के श्लोकों का उच्चारण किया और फिर इनमें कहे गये ज्ञान के २० लक्षणों की गिनती करवाई, जो कि इस प्रकार है :-

अमानी, अदम्भी, अहिंसा, शांति, आर्जव, आचार्य उपासना, शौच, स्थिरता, आत्मविनिग्रह, इंद्रियों के विषयों से वैराग्य, अनहंकार, 'जन्म-मृत्यु, ज़रा-व्याधि' के दोषों को बार- बार सूक्ष्मता से देखना, असक्त होकर रहना (अपने शरीर की अहंता का त्याग), अनभिष्वङ्ग रहना (पुत्र, स्त्री, धन, घर आदि की ममता का त्याग), अनुकूलता या प्रतिकूलता में मन को समान रखना, भगवान् की अनन्य भक्ति करना, सात्विक जगहों में ही रहना, विषयी लोगों के संग से दूर रहना, अध्यात्म ज्ञान या सत्य की कभी भी विस्मृति न होवे, तत्त्वदृष्टि से सभी प्राणी-पदार्थों में भगवान् को देखना; इस प्रकार श्रीभगवान् द्वारा कहे गये ये बीस लक्षण प्रत्येक साधक के सच्चे मार्गदर्शक हैं और १३/११ श्लोक के उतरार्द्ध में तो भगवान् ने स्पष्ट कह भी दिया है कि यही ज्ञान है और इसके अतिरिक्त सब अज्ञान है । सबसे पहले श्लोक १३/७ का संदर्भ देते हुए बाबाश्री कह रहे हैं कि ज्ञान का छठा लक्षण आचार्य उपासना शुरू होने से पहले ये पांच लक्षण होना आवश्यक है – अमानी, अदम्भी, अहिंसा, शांति, आर्जव । इनमें आपस में सम्बन्ध है; ये एक श्रृंखला है । ऐसे ही नहीं बोल दिए है भगवान् ने ये २० लक्षण ; इनमें एक बहुत सुंदर कड़ी है । वह कड़ी ये है कि आचार्य उपासना (गुरु-शरणागति) के बाद ही शौच अर्थात् अन्तःकरण पवित्र होता है और आचार्य-उपासना से पहले ये पाँच गुण चाहिए - अमानी, अदम्भी, अहिंसा, शान्ति, आर्जव । ये पाँच गुण हैं, जिनसे गुरु उपासना बनती है; नही तो पाखंड बन जाती है । ईश्वर उपासना, गुरु उपासना या भक्त उपासना – ये सब उपासना एक ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है । (यथा देवे तथा गुरु) पहला गुण अमानी – अपनी मान प्रतिष्ठा ना चाहना; गुरु उपासना तभी बनती है, जब शिष्य अमानी होता है । मान रहेगा तो गुरु के पास जाकर भी शिष्य राग–द्वेष करेगा, उपासना नहीं होगी । वहाँ भी जाकर सोचेगा कि गुरुजी ने हमें तो माला नहीं दी, बाकी सबको दे दी । हमें सबसे पहले चरणामृत या प्रसाद मिले । हम इतनी दूर से आये हैं और गुरु जी ने देखा तक नहीं । हमने गुरुजी को इतना दान दिया, पर उन्होंने एक बार भी मेरी प्रंशसा नही की । हम सबसे अच्छी मंदिर की सेवा करते हैं और नाम-प्रचार का कार्य करते हैं परन्तु गुरुजी तो पीठ थपथपाने की जगह गाली ही देते हैं आदि-आदि । गुरु के सामने मान-सम्मान का भाव आया और सब शरणागति नष्ट हो गई । इसे दूसरे रूप में दैन्य भी कह सकते हैं कि सद्गुरु

के पास सचमुच दीन होकर जाओ, तभी सच्चा लाभ ले सकोगे । श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी ने भी अपनी शिक्षाओं में सबसे पहले 'अमानी होना' कहा है – 'अमानिना मानदेन ।' दूसरा गुण 'अदम्भी' – दिखावा न करना; उपासना तभी बनती है जब मनुष्य 'अदम्भी' यानि पाखण्ड रहित होता है । गुरु की उपासना तो कर रहे हैं लेकिन संसार को दिखाने के लिए कि देखो हम कितने श्रेष्ठ हैं, हम कितनी गुरुजी की सेवा करते हैं । इस प्रकार संसार को दिखाना वेश्यावृत्ति है, पाखंड है, व्यापार है, दम्भ है, ढोंग है, व्यभिचार है, उपासना नहीं है । तीसरा गुण 'अहिंसा' – भोग का त्याग करना; उपासना तभी बनती है, जब हिंसा रहित होता है । हिंसा केवल मारना-पीटना नहीं है, भोग करना भी हिंसा है । व्यासजी ने हिंसा का अर्थ किया – भोग-त्याग । भोग का त्याग नहीं करोगे तो सत्संग करने जाओगे, वहाँ भी भोग भोगने लग जाओगे, सत्संग क्या करोगे । पतंजलि भगवान् ने तो अहिंसा के सूत्र बनाए हैं और व्यासजी ने उसका बहुत सुन्दर भाष्य किया है । 'हिंसा' का सामान्य अर्थ लोग लेते हैं – 'मारना-पीटना' लेकिन व्यासजी कह रहे हैं कि सबसे बड़ी हिंसा तो 'विषय-भोग' है; इसमें मनुष्य की सब वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं । ऋषभ भगवान् ने भी कहा है कि अनासक्त भोग तो अलग बात है लेकिन आसक्त भोग बुरा है क्योंकि जैसे मैथुनी भोग से बच्चे पैदा होते हैं, वैसे ही आसक्त होकर विषय भोगने से भी दो बच्चे पैदा हो जाते हैं – 'राग और द्वेष' – 'पुंसः स्त्रिया.....' (श्रीभागवतजी ५/५/८) हृदय में गाँठ पड़ जाती है आसक्त भोग से और दो बच्चे पैदा होते हैं – 'अहंता और ममता' फिर उससे राग-द्वेष आदि उत्पन्न हो जाते हैं – मैं स्त्री हूँ, मैं भोग्या हूँ, ये मेरा पति है आदि-आदि, तो व्यासजी कहते हैं कि आसक्त भोग सबसे बड़ी हिंसा है । इससे हृदय में ऐसी गाँठ पड़ जाती है, जो मरने पर भी नहीं छूटती । इस तरह इसमें हिंसा हो गई अर्थात् उपासना के लिए जितनी शुभ वृत्तियाँ थी 'दैन्य' इत्यादि, वे सब खत्म हो गयीं । यह हिंसा का बड़ा ही सूक्ष्म अर्थ है, साधारण जनता हिंसा के इस अर्थ को नहीं समझ सकती । हिंसा जब चली गई, भोग चला गया तो उपासना ठीक चलेगी, नहीं तो वहाँ भी राग-द्वेष रहता है और सारा जीवन ऐसे ही गलत उपासना में व्यर्थ चला जाता है । चौथा गुण 'शान्ति' – संतोषी होना; गुरु के पास सन्तोष-भाव से जाने से ही उपासना बनेगी । जहाँ सन्तोष नहीं है, वहाँ छोटी-छोटी बातों पर अन्य लोगों से लड़ाई – झगड़ा करेगा, शान्ति नहीं रहेगी तो गुरु-उपासना नहीं होगी । पाँचवा गुण 'आर्जव' – 'सरल होना' आर्जव आने पर मनुष्य गुरु के पास जाकर कपट नहीं करेगा, सरल हृदय से गुरु के पास जाएगा । वहाँ जाकर किसी प्रकार का छल – कपट आदि नहीं करेगा । अतः आचार्य या गुरु-उपासना तभी शुरू होती है, जब पहले ये पाँच गुण आ जाते हैं । अगर ये सब नहीं हैं तो उपासना नहीं बनती, एक ढोंग चलता रहता है कि हम उपासक हैं, हम शरणागत हैं, ये सब एक आडम्बर चलता है । जिसके पीछे ये सब चीजें हों, तभी आचार्य उपासना चल पाती है । बस, जहाँ आचार्य उपासना चली, वहाँ 'शौच' अर्थात् पवित्रता आ जाती है, मन पवित्र हो जाता है । इसके पहले मन पवित्र नहीं हो सकता । ये मानसिक रोग किसी भी साधन से नहीं जायेंगे, एकमात्र सद्गुरु (जिसके अंदर स्वयं ये गुण होंगे) की सच्ची शरणागति से ही जायेंगे । 'सच्ची शरण' यानि फिर गुरु के वचनों पर पक्का विश्वास हो जाएगा, जिससे धीरे-धीरे मन शुद्ध हो जाएगा । श्रीरामचरितमानस में कहा गया है – 'सदगुर बैद बचन बिस्वासा ।' गीताजी के उपरोक्त पाँच श्लोक, ज्ञान के बीस लक्षणों का एक ऐसा विशेष क्रम बता रहे हैं कि जिसके अनुसार आत्मचिन्तन-मनन करते रहने से साधक अतिशीघ्र अपने परम लक्ष्य श्रीभगवत्प्रेम की प्राप्ति कर सकता है ।

जिन्है हरि भगति पियारी हो ।
मात-पिता सहजै छूटैं सब छूटैं, सुत अरु नारी हो ॥
लोक भोग फीके लागे सब सम, अस्तुति औ गारी हो ।
नित हानि-लाभ नहिं चाहे नेकहुं, सबहिं आसा हारी हो ॥
जगसूं मुख मोरे रहैं करैं, ध्यान गिरधारी हो ।
मनुवां लाग्यो रहै हरि चरनन, घट छाई उजियारी हो ॥
गुरु सुकदेव बताई हम कूं, प्रेमी की गति भारी हो ।
'चरनदास' चारों वेदन सूं, औरे गाने कछु न्यारी हो ॥

रसिकाचार्य श्रीवंशीअलीजी की जीवनी

श्रीनारायणमिश्र का नाम रसिक संत-परम्परा में इसलिये भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वे अपने समय के एक परम रसिक भक्त थे। श्रीनाभाजी की भक्तमाल में नारायण मिश्र के सम्बन्ध में एक छप्पय प्राप्त होता है, जिससे उनके व्यक्तित्त्व, विद्वत्ता और भक्ति-भावना का प्रामाणिक परिचय मिलता है।

छप्पय निम्नलिखित है : - **नाम नरायन मिश्र, वंश नवला जु उजागर। भक्तन की अति भीर, भक्ति दसधा कौ आगर।।**

आगम-निगम-पुरान, शास्त्र सब ही कर देखे। सुरगुरु-सुक-सनकादि, ब्यास नारद जु बिसेखे।।
सुधाबोध रस, सुरधुनि, जसबितान जग में तन्यौ। भागौत भली विधि कथन कौं, धनि जननी एकै जन्यौ।।'

श्रीनारायण मिश्र सारस्वत नवला वंश में ब्राह्मण जाति के थे, जो लाहौर के रहने वाले थे। आपका जन्म सम्वत् १५५० (सन् १४९३) आषाढ़ सुदी १५ को हुआ था। श्रीमद्भागवत की कथा विशुद्ध भक्तिमय भाव से कहते थे। इन्हें श्रीशुकदेवजी का वरदान प्राप्त था। अकबर से भी पहले ब्रजधामवास करने की इच्छा से यह लाहौर से पधारे और फिर मथुरापुरी में ही वास करने लगे, वहाँ आपके पुत्र किशोरीदासजी हुए, इनके पुत्र गोवर्द्धनदासजी हुए। गीतगोविन्दकार श्रीजयदेवजी ने इनको आचार्य कहा है, इन्हें कृष्णकूप से श्री केशव देव जी की मूर्ति प्राप्त हुई थी। इनके पुत्र कल्याण राय जी हुए। इनके पुत्र भूपतिराय हुए। इनके चार पुत्र देवकीनन्दन, ढेढराज, जसोदानन्दन और जयकृष्ण हुए। जयकृष्ण के वृजभूषण पुत्र हुए, जिन्होंने भोगटीका नाम का ग्रन्थ रचा, इनके पुत्र कमल नयन थे, जिन्होंने 'व्रजचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ रचा, इनके दो पुत्र संकर्षणजी और प्रद्युम्नजी हुए। प्रद्युम्नजी के पुत्र वंशीधर (वंशीअलीजी) हुए।

मिश्र नारायणजी के कुल में भी ठाकुर किशोरीरमण नाम से श्रीराधामाधव युगल सरकार को लाड़ लडाते थे। परन्तु स्वयं मिश्र नारायणजी के रचे हुए ग्रन्थ भक्त परिच्छेद से स्पष्ट है कि वे स्वयं शुद्ध निर्विकल्प रस के प्रेमी श्रीराधिकारानी के अनन्य उपासक थे। श्रीवंशीअलिजी से पहले जितने गोस्वामी इस कुल में हुए उन सबके ग्रन्थों से भी यही सिद्ध होता है कि प्रत्यक्ष में वे सब ठाकुर श्रीकिशोरीरमण नाम से युगल भावानुयायी थे परन्तु वास्तव में श्रीशुकदेव मुनि की तरह श्रीकिशोरीजी ही उन सबकी इष्ट-देवता थीं और इसी कारण इन सबका गुप्त प्रेम श्रीशुकदेवजी की तरह श्रीकिशोरीजी के चरणों में था। गोस्वामी वंशीअलिजी स्वयं श्रीजी की वंशी का अवतार लेकर इसीलिये पधारे थे कि इस परम रहस्यमय प्रेम को प्रकट कर दें और कलिकाल में पाप-पंक में फँसे हुए मन्दभाग्य जीवों को श्रीस्वामिनीजी की दयालुता का परिचय दिलावें और इस भक्ति भाव से उनके सन्मुख लाकर भवसागर की त्रास मिटाकर सखी-परिकर में श्रीकिशोरीजी की सेवा का अधिकार दिलावें।

मिश्रनारायणजी मधुवन में निवास करते थे और वहाँ ही श्रीठाकुर किशोरीरमणजी की मूर्ति आपको सरोवर में से प्राप्त हुई थी। फिर मथुराजी में निवास किया और वहाँ बंगाली घाट पर श्रीठाकुर किशोरीरमण की सेवा करते रहे। फिर वृन्दावन में गोविन्द घाट पर श्रृङ्गार वट के समीप ललित कुंज में आकर रहे और वहीं अपने ठाकुर को लाड़ लडाते रहे। इस प्रकार इनका परिवार श्रीसंकर्षणजी और श्रीप्रद्युम्नजी के जन्म तक वृन्दावन में ही रहता रहा। प्रद्युम्नमिश्रजी अपने शिष्य-सेवकों के अनुग्रह करने पर ठाकुर श्रीकिशोरीरमणजी को संग लेकर दिल्ली पधारे तथा अपने भक्त-सेवकों द्वारा निर्मित मंदिर में विराजमान किया और इनका वंश आज तक दिल्ली, जयपुर एवं वृंदावन में वास करता है। आपने ललित कुंज का जीर्णोद्धार कराया और जयपुर में अपने विद्याबल से कई मंदिर बनवाये। जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने इनकी विद्या से चकित होकर जयपुर में मन्दिर बनवा दिया और जागीर भी लगा दी जो आज तक जारी है। जयपुर, मथुरा, वृन्दावन, दिल्ली आदि स्थानों में आपके बहुत से चेले, सेवक हो गये। दिल्ली का बड़ा मंदिर भी गोस्वामी प्रद्युम्नजी के शिष्यों व

सेवकों ने बनवाया और वे ही यथा समय इसका जीर्णोद्धार कराते रहे । विक्रम संवत् १९६८ (सन् १९११) में ला० मदनमोहन (बन्नोमल) ने मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था ।

वंशीअलिजी का जीवन-चरित्र

ललितसम्प्रदाय-प्रवर्तकाचार्य गोस्वामी श्रीवंशीअलीजीमहाराज, जिनका जन्म 'आश्विन, शुक्ल, प्रतिपदा' विक्रम संवत् १७६४ (सन् १७०७) को सारस्वत ब्राह्मणकुल में सुनाम धन्य श्रीप्रद्युम्नगोस्वामीजी के घर श्रीमती कृष्णावतीजी के गर्भ से दिल्ली स्थित लाड़लीजी के मन्दिर (बड़ा मन्दिर) में ही हुआ ।

हे वंशी, तू जाइ मिश्रनारायण कुल में । श्री प्रद्युम्न उदार भये कोऊ नहि तिहि तुल में ।।
जिनकै कृष्णावति जू पत्नी अनन्य उपासक । तिनकी कुंखि जनमि करि लीला सुजस प्रकासक ।।

उन दिनों दिल्ली में औरंगजेब का बड़ा बेटा प्रथम बहादुर शाह राज्य करता था । उसके दरबार में प्रद्युम्नजी की बड़ी इज्जत थी । बादशाह ने जब प्रद्युम्नजी के पुत्र-जन्म सुना तो बड़ी खुशी मनाई । घर में उत्सव किया गया तथा ब्राह्मणों को भोजन करवाया और दान दिया गया। नवजात शिशु गौर वर्ण का, कमल दल सरीखे नयन वाला, मन को हरने वाला था; इसीलिए ब्राह्मणों ने उसका सुन्दर नाम 'वंशीधर' रखा, जो उनके पिता को भी अच्छा लगा ।

शिशु ने जब माता का स्तन पान नहीं किया तो सबको बड़ी चिन्ता हुई । उसी समय एक ब्रजवासी बरसाने से आया, उसने जब यह सुना तो 'श्रीराधे ! राधे !!' नाम पुकारा । यह नाम सुनते ही शिशु एकाएक चौक पड़ा, पंकज दल की भाँति सुन्दर और पवित्र आँखें खोल दी और किलक कर पयपान किया । यह देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ । उस दिन से माता-पिता सब आपको 'राधे-राधे' पुकारकर खिलाने लगे । जब आप बोलना सीखे तो पहले राधे ! राधे !! कहने लगे । पाँच वर्ष की अवस्था में आप राधा सम्बन्धी भजन, खेल में भी गाने लगे । यज्ञोपवीत होने के पीछे पढ़ने बैठे तो थोड़े से वर्षों में ही संस्कृत के बड़े विद्वान हो गये । वेद, शास्त्र, पुराण सब पढ़ गये । प्रद्युम्नजी को इनके इतनी जल्दी ऐसे विद्वान् हो जाने पर आश्चर्य हुआ । तर्कशास्त्र के तो आप अद्वितीय विद्वान् थे । दस ही वर्ष की अवस्था में श्रीमद्भागवत के एक-एक श्लोक के कई-कई अर्थ करने लगे थे । आप नित्य निगम बोध घाट पर स्नान करते थे और मन्दिर में आकर नित्य श्रीमद्भागवत की कथा बाँचा करते थे ।

बद्रीनाथ एवं जगन्नाथ जी यात्रा

गोस्वामी प्रद्युम्नजी श्रीबद्रिकाश्रम और जगन्नाथजी की यात्रा को शिष्य-परिकरों सहित पधारे, श्रीवंशीअलिजी भी उनके साथ गये । बद्रीनाथ की यात्रा पर स्वयं श्रीबद्रीनाथजी ने प्रद्युम्नजी को स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि यह बालक परम भागवत और रसिक है, तुम्हें शुकदेवजी ने जो सुन्दर वरदान दिया था, उसी के फलस्वरूप इस पुत्र ने तुम्हारे यहाँ जन्म लिया है । प्रभु ने कहा कि तुम इसका लालन-पालन ठीक प्रकार से करना । यह बालक आगे चलकर भागवत के गुप्त रहस्यों का विस्तार करेगा । इस प्रकार का वरदान पाकर गोस्वामी प्रद्युम्नजी आनन्दित हुए एवं आगे जगन्नाथजी की यात्रा के लिए प्रस्थान किया । जगन्नाथजी में एकादशी के दिन जगन्नाथजी के दर्शन के लिये गये, वहाँ पुजारी ने आपको महाप्रसाद दिया । महाप्रसाद की महिमा वर्णन करते-करते ही रात बिता दी । प्रातःकाल द्वादशी को नित्य नियम से पहले ही प्रसाद ग्रहण कर लिया । पीछे मन्दिर से बाहर आकर नित्य नियम किया । अगले दिन जगन्नाथजी ने पण्डों को स्वप्न दिया कि हमारी प्रियाजी की वंशी पधारी है; उनका सत्कार करो, तब हम प्रसाद आरोगेंगे । यह स्वप्न देख पण्डों ने आपका बड़ा भारी सत्कार किया ।

किशोरी मोहे कब अपनावोगी ?

निज कर-कमल धर मस्तक पर, श्री वृन्दावन बसावोगी ।

सुन्दर रूप स्वरुप आपनो, कबतो मोहि दिखावोगी ।

अली किशोरी नाम साँचो कर, रसिकन माँय मिलावोगी ।

पुष्कर स्नान व जयपुर यात्रा

एक समय जब सवाई जयसिंह ने प्रद्युम्नजी को दर्शन के लिये बुलाया, उस समय वंशीअलिजी की अवस्था दस वर्ष की थी; प्रद्युम्नजी इन्हें भी अपने साथ ले गये । पहले पुष्कर स्नान करके, फिर जयपुर पधारे । राजा ने आपका बड़ा आदर सत्कार किया । एक दिन राजा समस्त पंडितों समेत गोविन्द जी के मन्दिर में बैठे थे । उस समय भागवत सुनते-सुनते पंडितों से प्रश्न किया कि महाराज ! हमारी एक ही शंका है; कृपा करके उसका समाधान कर दें । वह यह है कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र गुरु सान्दीपनि से विद्या पढ़ चुके तो गुरु दक्षिणा में गुरुपत्नी का पुत्र लेने गये, उस समय पांचजन्य को मार कर भगवान् ने शंख धारण किया था और जन्म से पहले वसुदेव और देवकी को जो चतुर्भुज मूर्ति का दर्शन दिया था, उस समय भी शंख-धारण कर रखा था; सो यह क्या भेद है, पांचजन्य को मारने से पहले ही भगवान् के पास शंख कहां से आया था । इस प्रश्न को सुन कर बड़े बड़े विद्वान् भी भ्रम में पड़ गये । उस समय राजा ने गोस्वामी प्रद्युम्न जी से कहा – 'हे महाराज ! आप ही इसका समाधान कर सकेंगे ।' यह वचन सुनकर गोस्वामी प्रद्युम्न जी ने वंशीधर जी की ओर देखा और कहा – 'बेटा ! आज राजा की इस शंका का समाधान तुम ही करो ।' आपने पिता की आज्ञा से शंका समाधान करना प्रारम्भ करा और कहा – 'हे राजन् ! प्रभु जी के आयुध पार्षद नित्य हैं । पांचजन्य को जो शाप था उस शाप से छुड़ाने के लिये भगवान् ने उसे मारा । प्रभु के हाथ से मर कर वह मोक्ष को प्राप्त हुआ अर्थात् नित्य पार्षद में अंश जा मिला । जिस प्रकार सनकादिक ऋषियों ने जय विजय को शाप दिया था; उस शाप के कारण तीन जन्म में उन्होंने जब मोक्ष पाया तो उनका अंश भी नित्य पार्षद जय-विजय द्वारपालों में जा मिला और जय विजय उस शाप काल में भी नित्य पार्षद रूप द्वारपाल बने ही रहे थे। इसी प्रकार शंख भी शाप के कारण अंश रूप से पांचजन्य राक्षस बना और प्रभु के हाथ से मृत्यु पाकर मोक्ष होने पर यह अंश भी नित्य पार्षद रूप शंख में जा मिला ।' दस वर्षीय कुमार से यह समाधान सुनकर राजा चकित हो गया और जागीर भेंट में दी । उसी का नया पट्टा गोस्वामी केशवराय जी के पुत्र गोस्वामी लाड़लीप्रसादजी के नाम ठाकुर किशोरीरमण के नाम का ही सवाई रामसिंह ने पुनः जीर्णोद्धार कर दिया है ।

श्रीलाड़लीलाल का प्राकट्य

जब आपकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी, तब आपका विवाह हो गया एवं सोलह वर्ष की अवस्था में विक्रम संवत् १७७९ (सन् १७२२) को राधाष्टमी के दिन श्री जी ने स्वप्न में दर्शन दिए, तब आपने बड़े मंदिर प्रांगण स्थित जामुन के वृक्ष के नीचे से श्रीजी का विग्रह प्रगट किया एवं विक्रम संवत् १७८० (सन् १७२३) वैशाख, शुक्ल, पूर्णिमा के दिन श्रीजी को निज मंदिर में विराजमान कर 'लाड़लीजू' नाम दिया । बीस वर्ष की अवस्था में आपके पुत्र हुआ, उसका नाम 'पुंडरीकाक्ष' रखा ।

वंशीअलिजी का पैतृक-कार्य श्रीमद्भागवत की कथा सुनाना था । आपकी कथा इतनी सरस होती थी कि मानो अमृत की वर्षा हो रही हो । आपने भागवत एवं अन्य संस्कृत ग्रन्थों को हृदयङ्गम कर लिया था, तर्कशास्त्र के अद्वितीय विद्वान थे, श्रीमद्भागवत के कठिन श्लोकों का वैदुष्यपूर्ण जब व्याख्यान करते तो बड़े-बड़े दिग्गज पण्डित भी हतप्रभ हो जाते । जब आपकी आयु २८ वर्ष थी, सम्वत् १७९२ (सन् १७३५) में आपके पिता गोस्वामी प्रद्युम्नजी का स्वर्गवास हो गया । इसके एक वर्ष बाद राधाष्टमी पर राधाकृष्ण तथा मनसाराम नाम के पंडा राधाकुण्ड से आये और उन्होंने 'रंग बरसे री हेली कीरति महल में' यह बधाई गाई । उस समय आप इतने प्रेममग्न हुए कि आपको शरीर की कुछ सुध नहीं रही । प्रेमाश्रु बहने लगे और मूर्छित होकर सिंहासन से भूमि पर गिर पड़े और डेढ़ घंटे बेहोश रहे । इसके बाद आपने राधाष्टमी पर तीन हज़ार रुपए खर्च किए । माताजी के रोकने पर भी आप नहीं माने । दूसरे साल, सम्वत् १७९४ (सन् १७३७) में दो हज़ार रुपए लगाकर श्री किशोरी जी का जन्मोत्सव मनाया । माता के मना करने से आप नाराज़ होकर बरसाना चले गए। आपके बरसाना जाने के कुछ ही दिन बाद नादिरशाह ने दिल्ली में लूट और कत्लेआम किया था । मंदिर का भी सारा धन, जिसको खर्च कर उत्सव में लगाने से माता ने रोका था, वह लूट में ही चला गया ।

बरसाना जाकर कुछ दिनों तक आपने गहवर वन में निवास किया और वहाँ किशोरी अलि को श्री ललित मंत्रोपदेश देकर शिष्य बनाया। फिर यहाँ से वृन्दावन पधारे और गोविंद घाट के पास बड़े रास मंडल के समीप ललित कुंज में निवास किया। वहाँ रास पंचाध्यायी पर संस्कृत में टीका की। आपने "राधा तत्व प्रकाश" और "राधा सिद्धांत" नामक दो ग्रंथ लिखे। बरसाना निवास के दिनों में उत्सवों के पद, श्री किशोरी जी की भाषा, रास पंचाध्यायी, वात्सल्य, माधुर्य, सख्य रसों के पद, हृदय सर्वस्व भाषा आदि रचनाएँ कीं। हृदय सर्वस्व में संस्कृत के राधा सिद्धांत के बहुत से भाग की टीका ही दोहों में कह गए हैं, जो ग्रंथ की समाप्ति पर दी गई है। संस्कृत में आपने मोक्षवाद, शक्ति स्वातंत्र्य परामर्श और वेदोक्त राधोपनिषद् पर संस्कृत में टीका की, तथा अन्य ग्रंथों की भी रचना की ।

<u>*श्री ललिता जी द्वारा गुरु दीक्षा*</u>

उसके बाद आप वृन्दावन आ गए। आप वृन्दावन में श्रृंगार वट के पास अपने पूर्वजों के स्थान ललित कुंज में निवास करने लगे और प्रतिदिन तीन बार यमुना स्नान को जाते। यहीं श्री राधा की आज्ञा से महासखी श्री ललिता जी द्वारा आपको मंत्र-दीक्षा प्राप्त हुई ।

आगैं बट कूप कुंज सोहै सीताराम जू की, अष्ट सखी जुत पिय राजत किशोरी जू ।
तहाँ श्री गुसाईं वंशीधर रहें सुख लहैं, जिन राधा नाम ही सौं साँची रति जोरी जू ।।
राधा अष्टमी कौ उत्सव करें नीकी भाँति, वह सुख कैसे कहूं मेरी मति थोरी जू ।
हित अनुसार वस्तु करी निर्धार, लोक वेद श्रृंखला अनेक बिध तोरी जू ।।

"श्रीवंशीअलि द्वारा वृन्दावन में श्रीराधा की अभिन्न सखी श्री ललिता के दर्शन करने की एक महत्त्वपूर्ण तथा अत्यन्त गोपनीय घटना का उल्लेख श्री किशोरी अलि ने किया है । उनके अनुसार - एक दिन श्री वंशीअलि ने भोर में ही नए पद बनाकर गाए । उसके बाद वे यमुना-स्नान के लिए श्रृंगारवट नामक पास के घाट पर गए । वहीं पर एक सुंदर बालिका का रूप धारण करके श्री ललिता ने उन्हें दर्शन दिए और यह कहकर कि 'वंशीअलि ! आ, तुझे मंत्र दूँ' अपने निकट बुलाया । वंशीअलि को मंत्रोपदेश करने के बाद वे अंतर्धान हो गईं और ढूँढने पर भी कहीं नहीं मिलीं । श्रीवंशीअलि को प्रेमविवश होकर मूर्छा आ गई । दोपहर तक वे अचेत अवस्था में वहीं पड़े रहे। जब उनके शिष्यों ने ललितकुंज से आकर उन्हें उठाया तब उन्हें बाह्य स्थिति का ज्ञान हुआ। उसी समय उन्होंने एक बड़ा उत्सव करवाया। किशोरि अलि जी ने 'भावनाविलास' में लिखा है कि उसी समय मुझे मथुरा से बुलाकर मंत्र दीक्षा दी और इस कथा का पूरा वृत्तांत कहकर सुनाया। इससे पहले श्री वंशीअलि के द्वारा बरसाने में रहते समय भी श्री किशोरअलि ने द्वाक्षरी मंत्र दिए जाने और किशोरीअलि नाम रखने का उल्लेख किया है । श्री राधारानी की परा सखी श्री ललिता जी, श्री वंशी अली जी की गुरु हैं और वह शिष्य वंशी अली के लिए तत्व स्वरूपा श्री राधारानी से भी अधिक मान्य हैं । दीक्षा के बाद श्री ललिता जी ने आपको बरसाने जाकर भजन करने की आज्ञा दी, साथ ही साथ यह आशीर्वाद भी दिया कि बरसाने में श्री जी के दर्शन होंगे ।

<u>श्रीबरसानावास</u>

वंशीधर जी बरसाना आ गए। अब सभी लोग आपको वंशी अलि के नाम से पुकारने लगे। बरसाना में आपने विरक्त वेश ले लिया और अपने पास केवल एक तुम्बी और एक अंगोछा या गुदड़ी के अतिरिक्त और कुछ नहीं रखा और रासोपासना प्रारंभ की तथा रंगीली गली में एक घूरे पर (कूड़ा फेंकने के स्थान) अपना आसन जमा कर भजन करने लगे।

एक मैया बोली, "अरे बाबा! तोए घूरे पै ही भजन करीबै की ठौर मिली का ?" वंशी अली जी बोले, "मैया, आप सखियों की चरण रज मुझे यहीं सुविधा पूर्वक प्राप्त होगी। जब आप कूड़ा फेंकेंगी तो बरसाना के भक्तों की चरण रज उड़कर मेरे मस्तक पर लगेगी । इस लोभ से मैंने अपना आसन यहाँ लगाया है।"

आपने बारह वर्ष तक घूरे पर रहकर भजन किया। एक बार श्री वंशीअलि जी बरसाना में श्री किशोरी जी का ध्यान कर रहे थे, तभी उन्होंने आकर उन्हें दर्शन दिया और पहाड़ पर बुलाकर ले गईं। उस समय पहाड़ पर स्थित 'श्रीजी' के मंदिर में चिंतामणि नामक पुजारी सेवा में थे। श्री वंशीअलि को भाव में विभोर मंदिर में जाते हुए देखकर चिंतामणि को क्रोध आ गया। यह सोचकर कि यह धृष्ट साधु 'श्रीजी' के मंदिर में प्रवेश करने का दुःसाहस कर रहा है, पुजारी ने उन्हें रोका; परंतु वंशीअलि को तो श्री किशोरी जी ने अपने पीछे-पीछे बुलाया था, अतः पुजारी की बात न सुन सके। पुजारी ने एक खड़ाऊँ उठाकर उनके सिर पर मार दी, जिसके परिणाम स्वरूप रक्त बहने लगा। श्री वंशीअलि ने कहा, "तुमने मेरे भाग्य का कलंक धो दिया है, तुम आज से मेरे पुरोहित हो।" इसके बाद उन्होंने पुजारी को अपना पुरोहित बना लिया। आज तक श्री वंशीअलि के कुल के पुरोहित बरसाना के उन्हीं पुजारी के वंशज चले आ रहे हैं। आज भी आपकी भजन स्थली रंगीली गली चौक, श्री धाम बरसाना में उसी तरह स्थित है ।

परी रहौं वृषभानु के द्वारें, जहाँ मेरी लाड़िली राधा । खेलत आवै सुख उपजावै, प्राणन की ये साधा ।।
कीरति कुल उजियारी प्यारी, हिय की चैन अगाधा । ठौर नहीं 'वंशीअलि' हिय में, और लगै सब बाधा ।।
कुँवरि किशोरी राधे सुख की रासि । देऊ कृपा कर मोहे लाड़िली बरसाने को वास ।।
तजो कृपणता बेगि छबीली ब्रजजन झूठन आस । घूरे लोट रहत 'बंशीअलि' ललिता सखी विश्वास ।।

वृन्दावन-आगमन

इसके उपरांत आप वृन्दावन अपने पैतृक स्थान ललित कुंज में आकर रहने लगे तथा विरक्त होकर राधोत्सव मनाने और राधा ध्यान परायण रहने के सिवा दुनिया के किसी काम से प्रयोजन नहीं रखा ।

श्रीराधा मम नयन प्रान राधा सुख संपत्ति है । राधा मुखकमल मेरे हिय को आधार है ।
धर्म पूज्य लोक इष्टमित्र वेद राधा ही, राधा को नाम मेरी रसना उचार है ।।
राधा बिन जानो जोपै और काई को, तोपे मन लाख लाख लाख कुल गार है ।
राधा ही साधन फल सिद्ध वंशी राधा ही, मेरे मन चाह राधा पान को उगार है ।।

द्रविड़ पंडित से शास्त्रार्थ

एक बार वृन्दावन में द्रविड़ देश से एक दिग्गज पंडित आया जो अपने साथ एक बैलगाड़ी भरकर पुस्तकें भी लाया था । उसने अनेक स्थानों पर शास्त्रचर्चा और वाद-विवाद की धूम मचा दी । उसकी विद्वत्ता के आगे कोई भी नहीं ठहरता था, वह सभी को पराजित कर देता था। सभी लोग हार कर श्री वंशीअलि के पास गए और उनसे सहायता करने के लिए प्रार्थना की 'कि उस द्रविड़ देश के पंडित से हमारी लाज की रक्षा कीजिए । वृन्दावन वासियों के उपासनीय रस का यश अब आप ही बचा सकते हैं ।' सबकी बात सुनकर वंशीअलि द्रवित हो गए और वहाँ गए । दोनों में बारह दिन तक निरंतर विवाद हुआ तथा उसी के मुख से शास्त्रों का उच्चारण कराकर उसे पराजित किया । इसके पश्चात उस पंडित ने बहुत दीनता प्रदर्शित की, दंडवत प्रणाम किया तथा सभी वृन्दावन वासियों की पद रज को सिर पर धारण किया ।

सम्प्रदाय-प्रवर्तन

'सम्प्रदाय' शब्द का अर्थ आम्नाय या परंपरा है । भक्ति की विविध पद्धतियों का प्रचलन जिन-जिन परंपराओं से होता आ रहा है, वे सभी भक्ति के सम्प्रदाय कहलाते हैं । भक्ति के सम्प्रदायों में जिन चार सम्प्रदायों को 'चतुः सम्प्रदाय' नाम दिया गया है, वे हैं- रामानुज, माध्व, विष्णुस्वामी और निम्बार्क। उपर्युक्त चारों ही वैष्णव सम्प्रदायों में यह मान्यता है कि उनके आदि प्रवर्तक भगवान् विष्णु ही हैं, उन्हीं से सम्प्रदाय आगे बढ़े हैं । कालान्तर में इन सम्प्रदायों के सिद्धांतों का निर्वचन जिन-जिन आचार्यों द्वारा किया गया, उन-उन के नाम से ही ये सम्प्रदाय विख्यात हुए। इस प्रकार उक्त चारों सम्प्रदायों की परंपराएँ क्रमशः श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक से जोड़ी गई हैं और इन्हें इनके आधार पर श्री सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय और सनक सम्प्रदाय भी कहा जाता है।

विष्णुस्वामी सम्प्रदाय

अंतस्साक्ष्य के आधार पर ललित सम्प्रदाय का संबंध विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय से सिद्ध होता है । इस सम्प्रदाय के अनेक कवियों ने अपनी गुरु-परंपरा में आचार्य विष्णुस्वामी का श्रद्धापूर्वक नामोल्लेख किया है । श्री वंशीअलि जी के समकालीन और उनके प्रिय शिष्य अलबेलीअलि ने अपनी 'गुरुपरंपरा' में इसी क्रम को अपनाया है - अन्य कवियों में श्री संकेतअलि ने स्पष्ट शब्दों में अपनी परंपरा को विष्णुस्वामी सम्प्रदायान्तर्गत होने का उल्लेख किया है -

विष्णुस्वामी संप्रदा, श्री वृन्दावन धाम । सेवत जुगल किशोर नित, हित कर आठों याम ।।

तिहि कुल वंशीअलि प्रगट, परम रसिक समर्थ । मंत्र सुनायो दरस दै, ललिता जू गहि हत्थ ।।

श्री गंगाप्रसाद गोस्वामी ने 'सम्प्रदायभास्कर' तथा 'नित्यविहारलीला' ग्रंथ की भूमिका में नारायण मिश्र को विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अंतर्गत बताया है तथा श्री वंशीअलि का उल्लेख भी उन्हीं की परंपरा में किया है ।

ललित-सम्प्रदाय

श्री वंशीअलि ने सम्प्रदाय की परंपरा के आद्याचार्य के रूप में श्री ललिता सखी को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। वे निकुंज-रस के उपासक थे । जिसमें न तो विष्णु का ही प्रवेश है और न किसी अन्य देवता का । केवल 'ललिता सखी' की कृपा प्राप्त करके ही वहाँ कोई प्रवेश पा सकता है । श्री वंशीअलि का कथन तो यहाँ तक है कि नंद के पुत्र श्री कृष्ण भी बिना ललिता की कृपा के उस रस को प्राप्त नहीं कर सकते । श्री ललिता की कृपा से 'सहचरी' बनकर ही नित्य-निकुंज में प्रवेश संभव हो सकता है । श्री वंशीअलि ने गुरु के रूप में श्री ललिता का ही उल्लेख किया है। 'राधासिद्धांत' में वे लिखते हैं :- **"गुरु श्री ललिता ज्ञेया सातु तस्था परासखी । तत्स्वरूपा च भक्तास्या राधातोप्यधिका मम ।।"**

श्रीनृसिंहदत्त शिगण राधासिद्धांत की टीका में लिखते हैं:- 'श्रीमद्वंशीअलि ने अपने सम्प्रदाय का मर्म बताया है कि हमारा 'ललित सम्प्रदाय' है, नामांतर से इसे 'रुद्र सम्प्रदाय' या 'विष्णुस्वामी सम्प्रदाय' भी कहते हैं क्योंकि शिवजी की साम्प्रदायिक गुरु श्री ललिता जी बताई गई हैं। जैसा कि 'सनत्कुमार संहिता' में भगवान शंकर के पूछने पर श्री ललिता जी ने बताया है'- 'हे महादेव, जिस युगल मूर्ति के दर्शन तुमने ध्यान में किए हैं, वही प्रत्यक्ष भी होंगे। जिस प्रकार तुम दर्शन पाने योग्य हो सको, वही यह नीलांबर ग्रहण करो और जैसा मेरा स्वरूप है, वैसे ही स्वरूप का ध्यान करो।'

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री वंशीअलि ने अपनी उपासना के स्वरूप के अनुकूल सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक रूप में उन्हीं श्री ललिता के नाम को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। वस्तुतः इस रूप में 'ललिता' को जो महत्त्व इस सम्प्रदाय में मिला है, वैसा इससे पूर्व कहीं भी नहीं । इसी मान्यता को देखकर इनके सम्प्रदाय का नाम 'ललिता सम्प्रदाय' या प्रचलित रूप में 'ललित सम्प्रदाय' उचित ही है ।

श्री वंशीअलि ने संप्रदाय को एक नया रूप प्रदान किया। श्री राधा की आराधना में वे वृषभानु के समान थे। अनन्य धर्म के वे उत्कृष्ट वक्ता और कर्ता थे तथा इसी रूप में सर्वत्र मान्य हुए। श्री अलबेलीअलि ने उनके बारे में लिखा है कि ऐसा अनन्य धर्म का प्रवक्ता आचार्य तथा मान्य न कोई हुआ है, न भविष्य में होगा और न वर्तमान में है। सखी-भाव से श्रीराधा उनकी सेव्या हैं और श्रीकृष्ण भी राधा के अभिन्न होने के कारण ही सेव्य हैं ।

वस्तुतः राधातत्व को नवीन रूप में प्रकाशित करने के कारण ही श्री वंशी-अलि को संप्रदाय-प्रवर्तक की उपाधि दी गई है। उन्होंने पूर्व प्रचलित सांप्रदायिक मान्यताओं से ऊपर उठकर जो कुछ भक्ति जगत में श्रेष्ठतम देखा उसे ग्रहण करके अपने सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या की और उन्हें सब प्रकार से योग्य रीति से प्रतिष्ठित करने में सफल हुए। यद्यपि वे उस कोटि के महात्माओं में थे जिन्हें लौकिक मान्यताओं तथा सांप्रदायिक संकीर्णताओं की किंचित भी परवाह नहीं होती और न ही उन्होंने किसी नए संप्रदाय की स्थापना के उद्देश्य से ही कुछ किया । वे तो सांप्रदायिक भावनाओं को उच्छिन्न कर श्रीराधा की शुद्ध और अनन्य भक्ति के संस्थापक थे । उन्होंने यहाँ तक कहा है कि उन्हें लोक और वेद का भय नहीं, न उन्हें संप्रदायादि की स्पर्धा है, उन्हें तो श्रीराधा के पदकमल की इच्छा है; परंतु न चाहते हुए भी उन्हें वह सम्मान

संप्रदाय में तथा बाहर भी मिला । उनके बाद उनका संप्रदाय उन्हीं के नाम से चला तथा उनके द्वारा प्रवर्तित सिद्धांतों को आधार मानकर ही उपासना पद्धति का अनुसरण किया गया । उनके द्वारा स्थापित सिद्धांतों के अनुसार शास्त्र-ग्रंथों की टीकाएं, व्याख्याएं उनके अनेक शिष्यों द्वारा की गईं तथा संप्रदाय का स्वरूप पुष्ट किया गया। इनमें किशोरीअलि का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

वंशी का अवतार

श्री हित हरिवंश जी को श्रीराधावल्लभ संप्रदाय में वंशी का अवतार माना जाता है। श्री राधा के स्वरूप का प्रकाश करने के लिए उन्होंने जन्म लिया था । श्री किशोरी अलि ने 'भावनाविलास' नामक ग्रंथ में लिखा है कि श्री किशोरी जी की इच्छा से पहले श्री लाल जी की वंशी ने हित हरिवंश जी के रूप में अवतार लिया और रस-रंग की रचना कर अगणित जीवों को महल में पहुंचाया तथा पुनः कलियुग के अधिक प्रबल होने के कारण उपासक जीवों का उद्धार करने के लिए वंशीधर के रूप में पुनः शरीर धारण किया ।

वैष्णव संप्रदायों में यह प्राचीन मान्यता है कि संप्रदाय के संस्थापक आचार्य को भगवान का अंश या उनके नित्य पार्षदों में से किसी एक का अवतार माना जाता है। वैष्णव-जगत में प्रसिद्ध सभी संप्रदायों के प्रवर्तक ईश्वर के किसी पार्षद के अंश हैं। जैसे, श्री विष्णुस्वामी स्वयं विष्णु के अवतार हैं, श्री रामानुज शेषावतार हैं, श्री निम्बार्काचार्य सुदर्शनचक्र के अवतार तथा मध्वाचार्य पवनावतार हैं। इसी प्रकार परवर्ती भक्तिकालीन आचार्यों में श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण के गौर अवतार, श्री स्वामी हरिदास ललितावतार, श्री हरिवंश जी वंशी के अवतार तथा आचार्य वल्लभ श्रीकृष्ण के ही स्वरूप माने गए हैं। इसी प्रकार श्री वंशीअलि को वंशी के अवतार के रूप में केवल मान्यता ही नहीं दी गई अपितु अनेक प्रमाणों से इसे सिद्ध भी किया गया है (द्रष्टव्य विशुद्धरसदीपिका, राधा-तत्व प्रकाश, आदि)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्री वंशीअलि की संप्रदाय-प्रवर्तक के रूप में मान्यता हुई तथा उनके सैद्धांतिक ग्रंथों तथा वाणी का अवलोकन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संप्रदाय के प्रवर्तन की प्रतिभा का जहां तक प्रश्न है, वह श्रेष्ठतम रूप में श्री वंशीअलि में थी और उसका प्रकाशन भी अत्युत्तम रीति से हुआ है।

श्री वंशीअलि जी का शिष्य-परिकर - श्रीवंशीअलि के पूर्वजों की उच्च कोटि की विद्वत्ता और उत्कृष्ट भक्ति के बल से उनका बहुत सम्मान था तथा सभी के अनुयायी शिष्य अनेक स्थानों पर रहते थे। श्री वंशीअलि के पितृचरण-श्री गुसाईं प्रद्युम्न जी महाराज के शिष्यों में श्री रामकृष्ण मिश्र तथा पं. किशोरी प्रसाद आदि श्रेष्ठ ग्रंथकार और टीकाकार हो गए हैं। स्वयं श्री वंशीअलि का शिष्य-समुदाय भी बहुत बड़ा था। इनके अनुगत शिष्यों में अनेक उद्भट विद्वानों और कवियों के नाम परंपरा-प्रथित हैं। अलबेलीअलि, किशोरीअलि, रूपमंजरी, रतनअलि, रामावतिअलि, कृष्णावति-अलि, ललितादासी प्रमुख कवि श्री वंशीअलि जी के उल्लेखनीय शिष्य तथा प्रमुख वाणीकार थे। उन्होंने ब्रजभाषा तथा संस्कृत में अनेक उत्कृष्ट रचनाएं प्रस्तुत की थीं। ये सभी विरक्त शिष्य थे। इनके अतिरिक्त उनके अनुगत भक्तों का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है, परंतु उनकी गणना करना संभव नहीं है। इनकी परंपरा में आगे चलकर श्री रूप रसिक जी के पुत्र हरिजनदास जी या जनहरिअलि, रंगीली दास, कृष्णादासी, मोहनअलि, वल्लभअलि, स्यामाअलि, पुजारी कीर्ति दास, संकेतअलि, सीताराम, कुंजअलि, रामाअलि, हरीअलि इत्यादि अनेक भक्त उत्पन्न हुए हैं तथा सभी का न्यूनाधिक मात्रा में साहित्य भी पाया जाता है। परवर्ती काल में गोस्वामी गंगाप्रसाद जी इनकी वंश-परंपरा में ही बड़े अच्छे कवि, संस्कृत के प्रकांड पंडित तथा सर्वशास्त्रनिपुण भक्त हुए हैं, जिन्होंने संप्रदाय को विलुप्त होने से बचाया तथा अनेक संस्कृत तथा भाषा की गद्य-पद्यमयी रचनाएं कीं ।

निकुंज-गमन

महात्मा वंशीअलि जी वृंदावन में अपने पैतृक स्थान ललित कुंज में निवास करके संवत् १८२२ (सन् १७६५) की आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को ५८ वर्ष की अवस्था में वृंदावन स्थित 'ललितकुंज' में श्रीराधारानी के ध्यानपरायण होकर उनके

सामीप्य को प्राप्त हुए । चन्दूलाल गोस्वामी ने अपनी 'वृंदावन-प्रकाश-माला' नामक पुस्तक में श्री वंशीअलि का जो उल्लेख किया है, उससे यह अनुमान होता है कि इस ग्रंथ की रचना के समय श्री वंशीअलि जी वृंदावन में विद्यमान थे। वे लिखते हैं : **माधो मास जन्म उत्सव करें जादो भक्त,** **दिन-दिग चौगुने ही चाव सरसात है।**

हित-परिकर श्री किशोरीलाल चाव लावे, **गाव हरषावें पुष्पवृष्टि बरसात हैं।**

इततै रसिक श्री वंशीधर आदि सम्मुख, **जावे गावे नाचे मोद उमगात है।**

यह सुख कहिवे को करत ठिडाई देखो, **सप्तसिंधु कहूं खग-चोंच में समात है।।**'

व्यक्तित्व

महात्मा वंशीअलि एक ऐसे पिता के पुत्र थे जिनकी कीर्ति सभी दिशाओं में फैली थी। वे रूप-गुण-संपन्न, सौम्य, सहृदय, मृदुभाषी और अतिशय उदार महात्मा थे । उनका व्यक्तित्व सहसा सबकी दृष्टि को आकर्षित करने वाला था। इसके साथ ही उनमें अगाध पाण्डित्य, वाणी की सिद्धता, विलक्षण विदग्धता, रसज्ञता आदि श्रेष्ठ गुण पूर्ण रूप से विकसित थे। उन सब गुणों से अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे एक निस्पृही भक्त थे । श्रीराधा के चरणों में उनकी अनन्य प्रीति थी और उन्होंने स्वयं को श्रीराधा के चरणों में पूर्णतया अर्पित कर दिया था । घर-गृहस्थ की ओर से उनका मन सर्वथा विरक्त था। श्रीराधा भक्ति के आगे लोक और वेद के नियमों को भी वे नहीं मानते थे । अद्वितीय ढंग से श्री राधा-जन्मोत्सव मनाने के कारण भक्त मंडली में उनकी बड़ी ख्याति एवं सम्मान था । उनकी रससिद्ध वाणी को देखने पर उनके भक्तिभाव की गंभीरता तथा प्रेम तत्व का स्पष्ट दर्शन होता है। जहां एक ओर उनकी वाणी में रस-संचार करने की अपूर्व क्षमता है, वहीं उनका शब्द-ज्ञान देखकर चकित रह जाना पड़ता है । उनकी वाणी में भक्तिकाल की आत्मा सशरीर उतर आई है। इस प्रकार कवि रूप में उनकी काव्य प्रतिभा प्रथम कोटि में गणनीय है। उनके पदों में भी श्री हितहरिवंश जी के पदों जैसा भाषा-माधुर्य तथा श्री हरिदास स्वामी जैसा भाव-माधुर्य विद्यमान है तो सूर की सी विदग्धता और सूक्ष्म दृष्टि से संपन्न प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । उनके संस्कृत-ग्रंथों में, जिनमें उन्होंने तात्विक विवेचन कर निश्चित सिद्धांतों की स्थापना की है - उनके प्रकांड पांडित्य की पूरी-पूरी छाप है। स्पष्ट है कि सकल शास्त्र-निपुण व्यक्ति की प्रखर प्रतिभा से उद्भूत होने तथा उनकी प्रथम कोटि की तार्किक बुद्धि से पुष्ट होने के कारण उनके ग्रंथ उन्हें आचार्यत्व के ऊंचे सिंहासन पर आसीन करने में सहज सक्षम हैं। वे वाद-विवाद से दूर रहना ही पसंद करते थे तथापि भक्ति का महत्व सर्वोपरि प्रतिपादित कर अपने युग के भक्तों के नैतिक बल की रक्षा में उन्हें वह भी स्वीकार करना पड़ा और उसमें वे सफल हुए। उनकी यह सफलता आश्चर्यजनक नहीं थी। अपने जन्मकाल से ही उन्होंने विद्या को अपने कंठ में धारण कर लिया था। उनकी अद्भुत प्रतिभा को देखकर उनकी अल्पायु में ही राजा जयसिंह जैसे विद्याव्यसनी पंडित को उनमें अवतार के दर्शन हुए थे । उनका नृत्य-संगीत आदि का ज्ञान भी अपने युग में सर्वश्रेष्ठ था। उनकी शब्द-रचना संगीत की लय-ताल के सर्वथा अनुकूल तथा मात्र पढ़ने से झनकार उत्पन्न करने वाली है। इसी प्रकार सांझी-रचना की कला में वे सिद्धहस्त कलाकार माने जाते थे ।

उपर्युक्त गुणों को देखते हुए यदि यह कहा जाए कि वे सर्वगुण संपन्न थे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उन्होंने अपनी प्रतिभा से, क्या पंडित, क्या गंवार, क्या भक्त, क्या ज्ञानी, क्या कलाकार, क्या राजनीतिज्ञ सबको अभिभूत कर लिया था। सब उनके थे, वे सबके थे। वे सबको सुख देने वाले बड़े रंगीले स्वभाव के महात्मा थे। सरलता और पांडित्यपूर्ण गंभीरता का ऐसा संयोग अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। श्री चन्दूलाल गोस्वामी के शब्दों में:-

सबको सुखद प्यारो बड़ो है रंगीलो यह, **जाके हिये माँझ प्रीत नित ही नवीन है ।**

पंडित सुशील गुनगननि की आलय है, **अमित सुधानिधि के रस माँझ लीन है ।**

गान, तान, नृत्य, सेवा, पूजा सब बातन में, **ताके तौ समान आन देख्यौ न प्रवीन है ।**

सब गुन सेव्य जाहि कैसी भांति कहूं ताहि, **राजसी में राजसी अरु दीनन में दीन है ।।**

उन्होंने रसमार्ग का प्रवर्तन करके भक्ति क्षेत्र में एक नई लहर उत्पन्न की थी। वे अनन्य धर्म का प्रतिपादन करने वाले एक श्रेष्ठ भक्ति-संप्रदाय के प्रवर्तक के रूप में सर्वत्र मान्य हुए। उनकी अनन्य धर्मनिष्ठा तथा समर्पित जीवन-चर्या को देखकर ही अलबेलीअलि ने उनके बारे में 'भूतो न भविष्यति' के साथ 'नास्ति' शब्द जोड़ उनकी विशेषता को प्रकट किया है-

अनन्यधर्म वक्ता च कर्त्ता तदनुमोदिता । **बभूव नापरोनापि भविष्यति न चास्ति च ।।**'

वंश-परम्परा

आपके सुयोग्य पुत्र गोस्वामी पुंडरीकाक्ष जी भी आप ही के समान परम विद्वान राधा उपासक हुए। सवाई प्रतापसिंह जी को आप बहुत प्रिय थे इस कारण जयपुर में अधिक रहते थे। आपको रास लीला कराने का बड़ा प्रेम था। रास कराने के लिए आपने करहला के रासधारियों को रख छोड़ा था और रास लीला करने वाले बालकों के सिर पर केश रखा दिए थे। शयन होने के उपरांत दो तीन घंटे बराबर रासलीला हुआ करती थी परंतु और किसी को उस रास के आनंद का अधिकारी न समझ कर मंदिर में ताला लगा ताली अपने पास रख कर रास कराया करते थे। जितनी देर रास होता था आप खड़े रहकर दर्शन किया करते थे। "कुंजमग झमक चलत अलबेली" इस पद के साथ रास समाप्त कराते थे। रास में आपको तन बदन की सुध नहीं रहती थी। नेत्रों से प्रेम के आंसुओं की धारा बहा करती थी। राजा सवाई प्रतापसिंह जी को बृजवासियों तथा बृजधाम से बड़ा प्रेम था। रास लीला का भी बड़ा प्रेम था। राजा ने अपना उपनाम बृजनिधि रखकर भाषा के अनेक पद बनाए, उनमें से एक पद यह है – **लाग गई जब लाज कहा रे ।**

जो दृग लगे नन्द नन्दन सों औरन सों फिर काज कहा रे ।।
प्रेम पियाला भर भर पीवें तुच्छ अमल को स्वाद कहा रे ।
बृजनिधि बृज रस चाखो चाहे या आगे फिर राज कहा रे ।।

इस पद के भाव से ही रसिक पाठक समझ गए होंगे कि महाराज सवाई प्रतापसिंह जी कितने प्रेमी थे। आपने लाखों रुपए प्रिया-प्रीतम को लाड़ लड़ाने तथा दान-पुण्य द्वारा बृजवासियों की सेवा में खर्च करे। एक दिन किसी कर्मचारी ने राजा को खबर दी कि गोस्वामी पुंडरीकाक्ष जी के मंदिर में हर रात्रि को ९ से १२ तक रासलीला होती है। क्योंकि महाराज का गोस्वामी पुंडरीकाक्ष जी से बड़ा प्रेम था, रासलीला की खबर सुनकर महाराज को विश्वास नहीं आया कि गोस्वामी जी रास करावें और हमें न बुलाएं ऐसा कदापि संभव नहीं हो सकता। इस बात का निश्चय करने के लिए एक दिन महाराज केवल मंत्री को साथ लेकर बारह बजे रात को गोस्वामी जी के मंदिर में पहुंचे। मंदिर को बंद पाकर गोस्वामी जी को अपने आने की खबर कराई। गोस्वामी जी ने उसी समय रास बंद करा दिया और अपने शयन के कमरे में महाराज को बुलाया और रात्रि में अचानक आने का कारण पूछा। राजा ने गोस्वामी जी को सोने के कमरे में पाकर और रास न देखकर कुछ बात बना दी। गोस्वामी जी ने अगले दिन से रास बंद करा दिया और रास धारियों को विदा कर दिया फिर एक समय राजा ने एकांत में गोस्वामी जी से पूछा कि महाराज हमें खबर लगी थी कि आप रास लीला का आनंद लेते हैं परंतु जाकर देखा तो कुछ भी नहीं पाया। गोस्वामी जी ने सच-सच कह दिया कि आप अभी इस निर्विकल्प रस के अधिकारी नहीं हैं। इसलिए मैंने भी आपका अचानक आगमन कारण जानकर उस दिन से रास कराना ही बंद कर दिया है । गोस्वामी पुंडरीकाक्ष जी के पुत्र केशवराय जी बड़े विद्वान राधा उपासक हुए। यह लखनऊ में अधिक रहते थे। सौ डेढ़ सौ वैरागी हर समय इनके साथ रहा करते थे। लखनऊ, कानपुर, बरेली, शाहजहांपुर आदि शहरों में आपके बहुत से चेले सेवक हो गए थे । इनका नाम काका जी भी था और कटरा नील दिल्ली का बड़ा मंदिर आपके नाम पर काका जी का मंदिर भी कहलाता था । केशवराय जी के पुत्र लाड़िलीप्रसाद जी उनकी गद्दी के अधिकारी हुए । लाड़िलीप्रसाद जी बड़े विद्वान तथा भगवद्भक्त थे । इनका उपनाम 'लाड़िलीअलि' था । इस संप्रदाय के प्रसिद्ध कवि 'संकेतअलि' इन्हीं के शिष्य थे । श्री संकेतअलि ने अपनी रचना 'संकेत-लता' में इनके संबंध में अनेक पद बधाई एवं प्रशंसा के लिखे हैं ।

लाड़िलीप्रसाद के पुत्र नागरीदास का युवावस्था में ही देहावसान हो गया। इसी शोक में लाड़िलीप्रसाद का भी परलोकवास हो गया। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके दामाद गणपतिलाल गद्दी के अधिकारी हुए। वे उच्च कोटि के भगवद्भक्त थे। उनके पश्चात् उनके बड़े पुत्र राधाप्रसाद जी जयपुर की गद्दी पर बैठे। राधाप्रसाद जी के तीन पुत्र हुए जिसमें श्री जुगलकिशोर गोस्वामी संप्रदाय के संबंध में विशेष ज्ञान रखते थे तथा उनकी भक्ति श्री राधा के चरणों में थी। इनके एक भाई श्री श्रीकिशोर गोस्वामी वृंदावन में शाहजहांपुर वाले मंदिर के अधिकारी थे और दूसरे भाई श्री श्यामकिशोर गोस्वामी कटरा नील, दिल्ली स्थित श्रीलाड़ली जी के बड़े मंदिर के अधिकारी थे ।

श्री वंशीअलि-रचित साहित्य

श्री वंशीअलि द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, परंतु प्राप्त उल्लेखों के आधार पर इनकी चौबीस रचनाओं का पता चलता है । इनमें से कुछ रचनाएं अभी तक अप्राप्त हैं। उपलब्ध रचनाओं में से अनेक वाणी ग्रंथों में संगृहीत हैं तथा कुछ रचनाएं स्वतंत्र रूप से प्राप्त होती हैं। श्री वंशीअलि कृत ग्रंथों की सूची निम्नलिखित है:- संस्कृत ग्रंथ - श्री माधुर्य शतम्, श्री कीर्ति वृषभानु स्तोत्रम्, श्री ललिता स्तोत्रम्, श्री वृषभानुपुर अष्टकम्, श्री अष्टपदी, श्री राधा सिद्धांत, श्री राधा तत्व प्रकाश, श्री राधा स्तोत्रम्, श्री राधा सिद्धांत की टीका, श्री रास पंचाध्यायी की टीका, मोक्षवाद, भेदाभेदवाद, शक्ति स्वातंत्र्य वाद, शक्ति स्वातंत्र्य प्रदीप, राधा लेश, राधोपनिषत् की टीका ।
हिंदी-ग्रंथ - ललिता मंगल, वृंदावन मंगल, हृदय सर्वस्व, सिद्धांत के पद, वात्सल्य के पद, माधुर्य शत, वर्षोत्सव के पद, माँझ ।

श्रीगुरु-चरणाश्रय – राधाभावुक उपासकों को चाहिए कि सर्वप्रथम वे इस साधना के निमित्त किसी निःसंग, कोमल-चित्त के भावाविष्ट रसोपासक को अपना गुरु बनाएँ । यद्यपि प्रेम का मार्ग स्वानुभव का मार्ग है, फिर भी पथ अटपटा होने के कारण गुरु की सर्वथा अपेक्षा रखता है । बिना गुरु के मार्ग निर्देश के पथ भटक जाने का भय रहता है । गुरु के प्रति परम श्रद्धा का उपदेश इस संप्रदाय के सभी महात्माओं ने दिया है । गुरु के चरणों का ध्यान करते हुए उन्हें नित्य प्रणाम कर उन्हीं की आज्ञा के अनुसार भगवत्साधन करना चाहिए । गुरु के सखी रूप का स्मरण करने से राधा की कृपा शीघ्र ही प्राप्त होती है। वास्तव में गुरु ललिता रूप हैं या वे उन्हीं के अंश हैं । इस संप्रदाय में भी गुरु का स्थान स्वयं भगवान से भी ऊंचा बताया गया है । क्योंकि वही उस आनंदलोक के रक्षक द्वारपाल हैं, जो जीव की परम गति है । गुरु-सेवा सब धर्मों से उत्तम बताई गई है । इस संप्रदाय में 'श्रीराधा' का नाम ही परम मंत्र है, वही परम गोपनीय रूप में शिष्य को प्रदान किया जाता है । मंत्र का नित्य जप ही समस्त सिद्धियों का दाता है । दीक्षा के साथ ही गुरु शिष्य को भाव-नाम भी प्रदान करता है। जिस साधक का जैसा भाव हो, अर्थात वह अपने को नित्यविहार में जिस सखी के अनुयायित्व में लगाए, उसी के अनुसार उसका भाव-नाम होता है। इस नाम के प्राप्त होने पर उपासक अपने पूर्वनाम, गृह, परिवार आदि सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है और उन सबका कभी स्मरण नहीं करता।

वेशभूषा

साधक गुरु से ही अपना वेश भी प्राप्त करता है। यह वेश संसार से त्याग और प्रेम-सेवा मार्ग का प्रतीक है। ललित-संप्रदाय में उपासकों की वेशभूषा बताते हुए किशोरीअलि ने लिखा है -
"सुंदर तुलसी माल छापे धरि गुंजहरा सुभ गर में । भयौ विदेह देहं रज धारै गूंदर करवा कर में ।।" इसके अनुसार श्रीराधा के सखी-भाव उपासक ललितानुगत भक्तों को शरीर में वृंदावन की रज मलने, गूंदर को लपेटने, सुंदर तुलसी की माला लेने, गले में गुंजों के हार पहनने तथा तिलक छापे लगाने का निर्देश किया गया है। वास्तव में स्वामी हरिदास जी, श्री व्यास जी आदि भक्तों ने गुदड़ी, करवा, रज-लेप इत्यादि का जो महत्व निर्धारित किया था, उसी को इस संप्रदाय में ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया गया है। वृंदावन के रस का आस्वादन करने के पश्चात् लोक में प्रचलित किसी भी प्रकार की

कामना का स्पर्श होता ही नहीं। इसलिए इस निराले पंथ में लोक से सर्वथा उदासीन रहने की परिपाटी का पग-पग पर उल्लेख किया गया है।

श्रीब्रजवास

ललित-संप्रदाय में ब्रज-वृंदावनवास को सर्वोपरि महत्व दिया गया है तथा सिद्धि के लिए उसे आवश्यक बताया है। यद्यपि श्री वंशीअलि जी ने राधा-नामांकित प्रत्येक धाम को भक्तों के निवास योग्य बताया है तथापि वे श्री वृंदावन में रस को नित्य प्रकट मानते हैं। उनका कथन है कि राधा-उपासकों को राधावन (वृंदावन) में, राधाकुंड पर, रावल ग्राम में अथवा वृषभानुपुर (बरसाने) में रहना उचित है। इनके अतिरिक्त मुखरा ग्राम, किशोरी वट, संकेत आदि स्थानों पर भी रहना सिद्धिप्रद बताया है ।

साधु-संग (सत्संग)

इस संप्रदाय में सत्संग को बड़ा महत्व दिया जाता है। श्री वंशीअलि जी ने श्रीराधा जी की सेवा से भी अधिक उनके भक्तों की सेवा का महत्व बताया है । एक स्थान पर वे कहते हैं कि 'हे मन, तू संतों के चरण रूपी कमलों का भजन कर, क्योंकि उनके चरण ही सब सुखों के देने वाले और संसार के मूल कारण मोह और काम को दूर करने वाले हैं। इसलिए संसार को छोड़कर गंगा के समान पवित्र संतों की सेवा करो और उनकी भक्ति-ज्ञान-वैराग्य से पूर्ण संगति को प्राप्त करो ! उनके साथ मिलकर श्याम-श्यामा के रूप में अपने नयनों को जुड़ाओ । समस्त शोक को दूर कर उनका गुणगान करो । उनको अर्पित करने के बाद ही अवशिष्ट भोजन करो और कपट को त्याग कर उनके साथ श्रीराधा का भजन करते हुए आनंद प्राप्त करो ।' श्री किशोरीअलि सब कुछ छोड़कर सत्संग करने की बात कहते हैं:-

****सब तजि कीजिये सतसंग ।**** ****भक्ति, ज्ञान, विराग दायक, जुगल प्रेम अभंग ।****

****संत मुनि सुन, संत हरि, गुरु संत पावन गंग ।**** ****संत सेवत रसिक दंपति मिलै सहित उमंग ।।****

प्रात समय राधा-राधा रट, सकल श्रुतिन को सार यहै रे ।' राधा नाम का महत्व बताते हुए वे कहते हैं कि इसके समान और कुछ नहीं है। योग, जप, तप, संयम से जो श्रीश्याम वश में नहीं होते वही हरि, राधा नाम सुनते ही हंस कर कंठ लगा लेते हैं । श्रुति जिसे नेति-नेति कहती है और स्मृति-पुराण जिसके साक्षी हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण ने अपनी मुरली में श्रीराधा की नामावली का उच्चारण करना स्वीकार किया है। शिव जी ने पार्वती को नाम का रहस्य बताया था, वही रहस्य श्रीललिता सखी से मानसरोवर में श्री नारद जी ने पाया था। श्री नारद जी ने व्यास जी को वही तत्व अपनी वीणा में गाकर बताया था। श्री हंस संहिता (श्रीमद्भागवत) में शुकदेव जी ने उसी को गाया है । इसीलिए मन, वचन और कर्म से निश्चय करके राधा नाम का भजन कर लीजिए, और वंशी का अनन्य सेवन कर रस का पान करिये ।

****राधा नाम समान न कोई ।**** ****जासों कृष्ण सदा बस होई ।।**** श्रीवंशीअलिजी के मत में श्रीराधा का नाम निरंतर गान करने वाला और श्री ललिता जी को गुरु मानने वाला चांडाल विषयों में आसक्त होने पर भी सबसे श्रेष्ठ है । श्रीराधा के नाम स्मरण से श्वपच भी द्विज बन जाता है। श्रीराधा का नाम-स्मरण विश्व उद्धारक है।"

ललित संप्रदाय के मुख्य केंद्र

गोस्वामी श्री वंशी अलि जी के जन्म से लेकर 28 वर्षों तक ललित संप्रदाय का मुख्य केंद्र ' दिल्ली चांदनी चौक कटरा नील स्थित लाडली जी का बड़ा मंदिर' रहा। जब आप वृन्दावन स्थित ललित कुंज में विराजे तब संप्रदाय का मुख्य केंद्र ललित कुंज वृन्दावन हो गया । वंशी अलि जी के निकुंज गमन के उपरांत उनके सुपुत्र गोस्वामी पुंडरिकाक्ष जी का अधिकतर समय जयपुर में व्यतीत हुआ । कालांतर में 'रामगंज बाजार, जयपुर स्थित श्री लाडली जी का मंदिर' संप्रदाय का मुख्य केन्द्र-मंदिर है ।

१. ललित कुंज: श्रृंगार वट, गोविंद घाट के समीप, बड़ा रासमंडल, वृंदावन

२. मंदिर श्री लाड़ली जी : श्री लाड़ली जी का बड़ा मंदिर ५७७, गली घंटेश्वर, कटरा नील, चांदनी चौक दिल्ली

३. मंदिर श्री लाड़ली जी: मंदिर श्री लाड़ली जी, रामगंज बाजार, जयपुर
४. मंदिर ठाकुर राधागोविंद जी: प्रताप बाजार, वृंदावन
५. श्री वंशीअलि जी भजन स्थली: रंगीली चौक, रंगीली गली, बरसाना

अवतार का आधार 'ब्रज की मधुर-उपासना'

बाबाश्री द्वारा कथित श्रीराधासुधानिधि-सत्संग (१/६/१९९८) से संकलित

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ-धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी ।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ॥

योगीन्द्रों के लिए भी जिन श्रीकृष्ण की गति दुर्गम है, वे भी जिन वृषभानु-कुमारी के अञ्चल की हवा से धन्य हो जाते हैं, कृतार्थ हो जाते हैं, वे वृषभानु नन्दिनी जिस दिशा में खेल रही हैं, उस दिशा को नमस्कार है ।

प्रश्न उठता है कि वृषभानुनन्दिनी जब श्रीकृष्ण के लिए भी इतनी दुर्लभ हैं तो वे संसार के जीवों को कैसे मिलेंगी तो इसका उत्तर दिया गया है कि वे धाम की कृपा से मिलेंगी । धाम का अवतार इसीलिए होता है । धाम का अवतार होता है और धाम के अवतार के कारण ही भगवान् सुलभ हो जाते हैं । धाम के कारण ही उनका मिलना आसान हो जाता है । बहुत से लोग शंका करते हैं कि वृन्दावन में क्यों रहो, बरसाने में क्यों रहो, गोवर्धन में क्यों रहो, नन्दगाँव में क्यों रहो? भगवान् तो सब जगह हैं । ऐसी जो बातें मन में उठती हैं, इस प्रकार की शंकायें नास्तिकता की होती हैं क्योंकि इस तरह से अगर आदमी शंका करेगा तो सारा भक्ति-मार्ग ही शंका से भर जाएगा । अब कोई शंका करे कि भगवान् साकार क्यों हुए ? वे अवतार क्यों लेते हैं ? भगवान् का ही नाम क्यों जपा जाए? जब सभी शब्द भगवान् के हैं तो हम गाली ही रटेंगे। शंका तो यह भी है कि 'राम ही राम' क्यों कहें? या किसी ने बताया कि अखबार में खबर छपी कि कानपुर में कोई कृष्ण-उपासिका हैं, उनका बड़ा नाम है, वह कृष्ण के श्रीविग्रह को फुल-पैंट, टाई आदि पहनाकर उनकी उपासना करती हैं । वह कहती हैं कि हमको श्रीकृष्ण के ऐसे ही दर्शन अच्छे लगते हैं । इस तरह ऐसी बहुत सी बातें कि श्रीकृष्ण वंशी वाले ही क्यों, मोर-मुकुट वाले ही क्यों हैं ?—जाने कितनी शंकाएं आदमी कर सकता है । वस्तुतः ये सब बातें नास्तिकता की हैं और इनका भावुकता से कोई संबंध नहीं है ।

भगवान् का अवतार होता है करुणा के कारण, कृपा के कारण । भगवान् का नाम संसार में फैलता है कृपा के कारण । भगवान् की हर चीज़ करुणा और कृपा के कारण होती है, अतः धाम का अवतार भी कृपा के कारण हुआ । अब यह शंका की जाए कि बरसाने में ही क्यों श्रीजी का अवतार माना जाये, श्रीजी तो सब जगह हैं । बरसाने में श्रीजी के प्रकट होने का यह मतलब नहीं कि ऐसा कहा जा रहा है कि श्रीजी सब जगह नहीं हैं परन्तु सरलता के लिए धाम का अवतार होता है। अब जैसे आप बरसाना में आते हैं तो यहाँ 'राधे-राधे' नाम सुनाई पड़ता है । यदि विदेश में जाओगे तो वहाँ 'राधे-राधे' कहाँ सुनाई पड़ेगा? मुसलमानों के देश चले जाओगे तो राधारानी का नाम कहाँ सुनाई पड़ेगा?

भगवान् चाहते हैं कि सरलता के साथ जीव हमारे पास पहुँचे, इसलिए एक निश्चित नाम, रूप, धाम—भगवान् कृपा करके प्रकट करते हैं और उस कृपा को, उस करुणा को न समझना ही नास्तिकता है । नास्तिक माने क्या होता है? 'न अस्ति'—भगवान् हैं, ऐसा विश्वास नहीं होता, उसको नास्तिक कहते हैं ।

अगर कोई कहता है कि हमको कृष्ण फुल-पैंट में दिखते हैं तो दिखें लेकिन इसका अभिप्राय यह तो नहीं हुआ कि मोर-मुकुट वाले कृष्ण हैं ही नहीं । अब दीखने को तो भगवान् काल-रूप से भी दिखाई पड़ते हैं । जैसी तुम्हारी भावना होगी, वैसे ही भगवान् दिखेंगे लेकिन उनका जो रसमय स्वरूप है, वह तो ब्रज में श्रीकृष्ण रूप ही है । अब क्या भगवान्

दिखाई नहीं पड़े ? मथुरा में कंस की सभा में विद्वानों ने प्रभु को विराट रूप में देखा । स्त्रियों को वे कामदेव के रूप में दिखे और कंस को काल रूप दिखाई दिया । कंस उनका काल रूप देखकर सोचने लगा - अरे, यह नन्द का लड़का तो बड़ा भयानक है, इसके आँख, नाक, कान कितने भयंकर हैं । अब उसको कृष्ण का सुन्दर रूप भयानक दिखाई पड़ रहा है । इसलिए जैसा तुम्हारा भाव है, प्रभु का रूप तुमको वैसा ही दिखाई पड़ेगा । तुम्हारा 'अंग्रेजियत' का भाव होगा तो कृष्ण तुमको फुल-पैंट और टाई पहने हुए दिखाई देंगे ।

इसीलिए जो रसमय भाव है, मधुर भाव है, वह कोई फुल-पैंट में हो सकता है, यह एक सोचने की बात है ।

अरे भाई, फुल-पैंट में तो अगर कोई कहता है कृष्ण दिखाई पड़ते हैं, तो बड़ा मुश्किल काम यह है कि अगर फुल-पैंट पहनकर कोई नाचता है तो उस नाच में क्या मधुरता आ सकती है ? मधुरता नहीं आ सकती क्योंकि वह वेशभूषा ही अलग है । ब्रज में विदेशों के भी लोग आते हैं । पहले एक अंग्रेज लड़की मान मन्दिर में आती थी, वह घुटनों तक की स्कर्ट पहनकर संकीर्तन में यहाँ की बाल साध्वियों के साथ नृत्य करती थी । यहाँ की 'बालिकाएँ' ब्रजगोपियों जैसा परिधान 'लहँगा-चुनरी' धारण करके नृत्य करती हैं । उनके बीच में अंग्रेज लड़की स्कर्ट (पाश्चात्य-परिधान) पहनकर नृत्य करती थी तो बहुत अशोभनीय लगता था । अब क्या उस विदेश के स्कर्ट में ब्रज के लहँगे का माधुर्य आ सकता है, कभी नहीं आ सकता है । आधुनिक विदेशी परिधान (स्कर्ट-टॉप) पहनने से ब्रजरस की मधुरता नहीं आ सकती है । भक्तिमय माधुर्य तो ब्रज-संस्कृति (ब्रज-पोशाक, ब्रजभाषा इत्यादि) के अपनाने से ही होता है । एक बार यहाँ रूस की टीम आई थी, वे लोग संकीर्तन में नाच रहे थे तो ऐसा लगता था कि 'ड्रिल' (सैनिकों का युद्धाभ्यास) हो रहा है; क्योंकि वे लोग भारतीय ब्रज-पोशाक (नाचने के योग्य वेशभूषा) नहीं पहने हुए थे । नृत्य तो वह है, जब कोई लहँगे वाली नाचती है, तो उस लहँगे की 'घूम' (चारों ओर गोल घेरेदार चक्कर) बनती है दूर तक । अब क्या छोटी सी स्कर्ट में वह घूम बन जाएगी ? विदेशी वस्त्रों में वह मधुरता ही नहीं आएगी, इसको अनुभव करके देख सकते हो । इसलिए भगवान् का जो रसमय स्वरूप है, रसमय स्वरूप के अनुसार ही भाव और वेष होता है । अब जैसे लोगों ने कहा कि शिवजी में भी श्रृंगार रस की भावना की जाए । अब शिवजी में तुम भावना करो श्रृंगार की तो बड़ा कठिन है, कैसे ? आपको हम प्रमाण बता दें । कोई कहे कि महादेव बाबा भी श्रृंगार-मूर्ति हैं, भगवान् हैं । अब बहस कौन करे ? हाँ भाई, हैं । लेकिन जब वे दूल्हा बनके गये तो सारे नगर में सब लोग भाग गए कि "बावरा दूल्हा आ गया, इसके शरीर में साँप फुँफकार रहे हैं !"... ऐसी स्थिति में वहाँ श्रृंगार रस कहाँ से बनेगा ? यहाँ तक कि उनकी सास जब परछन (दूल्हे की आरती उतारना) के लिए चलीं, तो शिवजी के शरीर में सर्प देखकर आरती का थाल गिर पड़ा और वह पीछे भागीं । अब अमंगल वेष में श्रृंगार-रस कैसे बनेगा ? हमारे मन्दिर में बहुत से भक्त आते हैं और जब फुल-पैंट वाले आते हैं तो वे साष्टांग दण्डवत् नहीं करते हैं क्योंकि उनकी पैंट की 'क्रीज' प्रेस बिगड़ जाएगी। वास्तव में पश्चिमी संस्कृति और वहाँ के वस्त्र भद्दापन, असभ्यता को ही प्रदर्शित करते हैं; उसमें कोई शालीनता, मधुरता तो है ही नहीं ।

इसलिए रस का जो शास्त्रीय विवेचन है, श्रीकृष्ण का जो स्वरूप है, उसके अनुसार भाव-पद्धति होती है । अस्तु, यह चर्चा चली थी कि धाम का भी अवतार होता है और धाम का अवतार इसलिए होता है क्योंकि भगवान् चाहते हैं कि जीव सरलता से मेरी प्राप्ति कर ले । रामायण में कहा गया है -

'भगत हेतु भगवान् प्रभु राम धरेउ तनु भूप । किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥'

भगवान् अवतार लेते हैं, क्यों? 'असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु । जग विस्तारहिं बिसद जस राम जनम कर हेतु ॥' भगवान् का जन्म होता है, अपनी जन्म लीला के द्वारा वे अपने यश का विस्तार करते हैं । ऐसा क्यों ? **'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥'** अर्थात् भगवान् कृपा के सिंधु हैं, इसलिए वे भगवान् जन-हित के लिए शरीर धारण करते हैं ।

कृपा के कारण भगवान् ने अपना नाम प्रकट किया, कृपा के कारण उन्होंने अपने धाम को प्रकट किया, कृपा के कारण पृथ्वी पर उनकी लीला होती है, कृपा के कारण वे अवतार लेते हैं । इसी प्रकार कृपा के कारण उनका धाम प्रकट हुआ, चले जाओ धाम, वहाँ भगवान् की प्राप्ति हो जाएगी । यह कृपा है । अब इसमें कोई शंका करे तो शंका के द्वारा भगवान् को सीमित नहीं किया जा सकता है । सरलता के लिए भगवान् का अवतार होता है, भगवान् के नाम का विस्तार होता है । श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने एक बड़ी सुंदर बात कही है - **'नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।'** भगवान् ने देखा कि मेरे पास तो कोई (साधारण) आदमी पहुँच नहीं सकता, तो जितनी शक्तियाँ थीं भगवान् में—पाप को नष्ट करना, शुभ देना, क्लेश को नष्ट करना, अविद्या का नाश करना, बीज का नाश करना, प्रारब्ध का नाश करना—वह सब शक्ति उन्होंने अपने नाम में रख दी और जीव से बोले - "ले भाई, तुम हमारे पास नहीं आ पाते, तो लो हमारा नाम ले लो ।" 'नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्तिस्तत्रार्पिता'—सारी शक्ति इन्होंने नाम में भर दी और - 'नियमितः स्मरणे न कालः' - इसमें कोई काल का बन्धन नहीं रखा कि दिन में नाम लिया जाएगा या रात में अथवा सवेरे । भगवान् बोले – २४ घण्टे नाम ले लो, अशुद्ध अवस्था में हो, मुर्दा है सिर पर, तब भी राम-राम कह लो; कैसी भी अवस्था में नाम ले सकते हो, इसमें कोई बन्धन नहीं है । पूछा गया - "ऐसा क्यों किया ?" अब 'क्यों' का उत्तर दे रहे हैं—'एतादृशी तव कृपा' । ऐसी कृपा थी । भगवान् ने कृपा किया कि जीव हमारे पास आएँ किन्तु हमारा दुर्दैव है कि हम उसका लाभ नहीं ले सके । 'तत्रापि नानुरागः'—भगवान् के नाम के प्रति हमारे अन्दर प्रेम ही पैदा नहीं हुआ । ये सारी बातें कृपा के कारण हैं । भगवान् ने पृथ्वी पर अपना धाम प्रकट किया कृपा के कारण, जिससे कि जल्दी से हम लोग उनके पास पहुँच जाएँ। इसी प्रकार नाम प्रकट किया कृपा के कारण । अपने जन-भक्तों को वे कृपा के कारण भेजते हैं । भगवान् अवतार लेते हैं कृपा के कारण, लीला करते हैं कृपा के कारण । अब हम जैसे मूढ़ इसमें भी 'किन्तु-परन्तु' करते रहते हैं—कि "ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों किया, ऐसा क्यों है, क्या केवल बरसाने में ही श्रीजी मिलेंगी क्या? "अरे, केवल गोवर्धन में, केवल वृन्दावन में, केवल नन्दगाँव और गोकुल में कृष्ण मिलेंगे ?"—इस तरह की शंका करने वाले शंका करते रहते हैं परन्तु उस कृपा को नहीं समझ पाते । वस्तुतः —"धाम की कृपा से श्रीकृष्ण मिलते हैं ।" धाम में कृपा कब मिलती है ? धाम में जब भाव होता है तब कृपा मिलती है, इतना अवश्य है । हर वस्तु तुम्हारी भावना के अनुसार मिलेगी, यह भक्ति-मार्ग का नियम है । भाव की जागृति के लिए सत्संग किया जाता है । इसलिए वहाँ जाओ, ऐसा सत्संग करो, जहाँ शुद्ध भाव की प्राप्ति होती है । शुद्ध भाव माने जो 'मेरा और तेरा' की संकीर्णता से ऊपर उठकर चलता है । ऐसा सत्संग प्रायः उपलब्ध नहीं होता है । समाज में अधिकतर उपदेष्टा साम्प्रदायिक संकीर्णता से घिरे हुए हैं । मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि संसार में शुद्ध व्यक्ति नहीं है । कभी-कभी हम सत्संग में अपने यहाँ की आलोचना कर देते हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि मान मन्दिर में जितने भी साधु हैं, वे ऐसे ही गड़बड़ हैं । नहीं, हम मान मन्दिर में रहने वालों की आलोचना इसलिए करते हैं क्योंकि हम चाहते हैं कि यहाँ छोटी-मोटी भी कमी नहीं होनी चाहिए । हमारे भीतर छोटी भी कमी है तो भविष्य में उससे बहुत अधिक हानि होगी जैसे किसी पानी के जहाज़ में छोटा-सा भी छेद हो तो वह जहाज़ को डुबो देगा ।

श्रीभावभक्ति

श्रीमद्भागवत में भगवान् ने कहा है –

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

(श्रीभागवतजी १०/८४/१३)

जो लोग केवल तीर्थों में पूज्य बुद्धि रखते हैं, उनके जल में नहाते हैं, मूर्ति की उपासना करते हैं, मूर्ति सेवा करते हैं परन्तु भक्तों का अनादर करते हैं, उनके प्रति पूज्य बुद्धि

नहीं रखते, उनको भगवान् ने गोखर (गधा) कहा, क्यों कहा? इसलिये नहीं कहा कि वहाँ से उनकी श्रद्धा हट जाए । नहीं, वहाँ की श्रद्धा के साथ-साथ जो मुख्य वस्तु है—'भगवज्जन'—उनमें भाव रहे, तभी वह तुम्हारी मूर्ति उपासना भी फल देगी, नहीं तो नहीं देगी । इस बात को लोग समझते नहीं । यह बात भागवत में लिखी है, गीता में, वैष्णव वार्ताओं में लिखी है; उदाहरण के तौर पर पुष्टि-मार्ग में लोग ठाकुरजी पधराते हैं और उनके सम्प्रदाय में सबसे पहले यही बात यही सिखायी जाती है कि घर में ठाकुरजी रखो और उनकी सेवा करो । जबकि श्रीमद्भागवत में भगवान् ने मूर्ति सेवा करने वाले को (यदि वह भक्तों का अनादर करे) 'गधा' कह दिया । इससे भी अधिक कड़वी बात पुष्टि मार्ग की वैष्णव वार्ताओं में लिखी है परन्तु बताये जाने पर भी जीव समझ नहीं पाता है इसको । पुष्टि सम्प्रदाय की दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में उल्लेख है कि एक बार गुजरात से आठ वैष्णव चले ब्रज में गोवर्धन स्थित गोपालपुरा (जतीपुरा) में श्रीनाथजी का दर्शन करने के लिए। सात वैष्णव पैसे वाले थे, उनमें से एक गरीब था । सात वैष्णवों का केवल श्रीनाथजी के श्रीविग्रह में, केवल मूर्ति में ही भाव था । अब देखिए आगे होता क्या है? ये घटनाएँ, वार्ता आदि पढ़ने के बाद भी लोगों को ज्ञान नहीं होता है । अस्तु, सात वैष्णव गोवर्धन में श्रीनाथजी के मन्दिर में पहुँचे । उन्होंने वहाँ बहुत सी भेंट अर्पित की क्योंकि वे बड़े धनी थे, इसलिए उन्होंने श्रीनाथजी के लिए पैसा, रत्न, मोती आदि अर्पित किये । जो आठवाँ वैष्णव था, वह गरीब था, वह अपने साथ एक कपड़े में चोखा (बहुत ही साधारण सा खाद्य पदार्थ) ले गया था क्योंकि अत्यधिक निर्धनता के कारण उसके पास कुछ था ही नहीं । उसने संकोच के कारण उसे श्रीनाथजी को भेंट नहीं किया, क्योंकि जहाँ अनेक तरह के रत्न, गिन्नी, हीरे-मोती आदि अपार सम्पत्ति भेंट की गयी है, वहाँ तुच्छ चोखा लेकर वह क्या करता लेकिन श्रीनाथजी तो (भाव) जानते हैं । उन्होंने उसी समय गोस्वामी विट्ठलनाथजी से कहा कि मुझे तो चोखा चाहिए । श्रीनाथजी ने सात धनी वैष्णवों की कोई भेंट स्वीकार नहीं की । उन सातों वैष्णवों की आँख अब भी नहीं खुली । वे एक कमरे में जाकर आराम से सो गये और जो गरीब था, उसके पास ओढ़ने का वस्त्र नहीं था और खाने के लिए कुछ सामान नहीं था । ठाकुर श्रीनाथजी रात को अपना रूप बदलकर अपनी सुन्दर ओढ़नी और भोग का बहुत बड़ा लड्डू, जिसे 'बंटा' कहते हैं, वह ले जाकर गरीब वैष्णव को दे दिया । वह उनको पहचान तो पाया नहीं कि ये श्रीनाथजी हैं क्योंकि वे तो कोई लड़के का रूप बनाकर गये थे और बोले - "अरे वैष्णव, तू भूखा है । ले श्रीनाथजी का प्रसाद ले ले और यह वस्त्र ओढ़ ले।" वह वैष्णव समझ नहीं पाया कि ये तो साक्षात् श्रीनाथजी ही हैं । वह तो सोच रहा था कि हम तो गरीब हैं, हमारी कोई पूछ नहीं है । उधर वे सातों धनी वैष्णव आराम से सो रहे थे । वे सोचते थे कि हम तो बड़े सेवक हैं । अब जब सवेरा हुआ और सभी लोग जागे तो श्रीनाथजी के एक सेवक की नज़र उस गरीब वैष्णव पर गई तो वह बोला कि अरे ! यह तो श्रीनाथजी की सफेदी ओढ़ रहा है और इसके पास श्रीनाथजी के बंटा के भोग का पात्र भी रखा है । ये श्रीनाथजी के पदार्थ इसके पास कैसे आ गये ? मन्दिर का ताला तो बन्द है, अतः यह मन्दिर में घुस नहीं सकता, चोरी कर नहीं सकता, फिर श्रीनाथजी की वस्तुयें इसके पास कैसे आ गयीं ? लोग गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पास गये और बोले—"जय जय महाराज ! अरे, आपको पता नहीं मन्दिर में चोरी हो गई है ।" गोस्वामी जी ने पूछा - "क्या हो गया चोरी ?" लोग बोले - " श्रीनाथजी की सफेद ओढनी एक दरिद्र आदमी ओढ़ रहा है और उनके बंटा-भोग का सोने का पात्र भी वहीं है जबकि मन्दिर बंद है । " गोस्वामीजी तुरन्त समझ गए कि उसे श्रीनाथजी ने दिया है, स्वयं अपना वस्त्र ओढ़ाया है । उन सात धनी वैष्णवों की आँख नहीं खुली थी, जब श्रीप्रभु उस गरीब वैष्णव का चोखा माँगकर खा रहे थे । उस समय गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने जो कुछ कहा, जो शब्द कहे, वह भागवत से भी कई गुना आगे की बात है । भागवत में तो भगवान् ने भक्त में भाव न रखने वाले के लिए इतना ही कहा कि वह 'गोखर' है, गधा है क्योंकि वह उपासना का रहस्य नहीं समझा परन्तु यहाँ गुसाईं जी कहते हैं —"तुम जो श्रीनाथजी की सेवा करते हो, उससे सौ गुना सेवा 'गुरु' की करना, जो उपासना सिखाता है और गुरु से सौ गुना सेवा 'वैष्णव' की करना, नहीं तो तुम्हारी उपासना सफल नहीं होगी।"

गोस्वामी विट्ठलनाथजी श्रीनाथजी की सेवा से हज़ारों गुना बढ़कर सेवा वैष्णव की बता रहे हैं । ठाकुरजी के प्रति की गयी तुम्हारी सेवा ही ग्रहण नहीं होगी, यदि वैष्णव में भाव नहीं है । इसलिए 'भाव' क्या है, इसे समझना कठिन है । हम समझते हैं कि हमने ठाकुरजी को स्नान करा लिया, श्रृंगार कर दिया, भोग लगा दिया और हो गयी हमारी सेवा । अरे ! ठाकुरजी की सेवा से हज़ारों गुना अधिक है कि पहले जो वैष्णव हैं, भक्त हैं, इनमें भाव रखो, नहीं तो तुम घंटी हिलाते रह जाओगे । कोई आचार्य इसका समर्थन नहीं करेगा, जो भागवत धर्म के मार्ग को जानने वाला है । हाँ, जो मूढ़ है, जिसका संकीर्ण दिमाग है, वह तो यही समझेगा कि अपने सम्प्रदाय के जो भक्त हैं, उन्हीं में भाव रखो, बाकी अन्य सम्प्रदाय के वैष्णवों से हमें कोई प्रयोजन नहीं है ।

कुछ लोग समझते हैं कि हमारे सम्प्रदाय का जो आदमी है, उसी के पास जाना चाहिए, वह चाहे जो भी दे, ले लेना चाहिए । वह ज़हर दे तो ले लो, पर दूसरे सम्प्रदाय के वैष्णव के पास मत जाओ । ऐसे लोग सच्ची भक्ति का रहस्य नहीं समझते । सच्ची भक्ति क्या है ? तुम्हारा गुरुभाई है लेकिन उसके पास भी तुम अगर 'लोभ-भाव' से गए तो तुम पतित हो गए; 'काम-भाव' से गए तो पतित हो गए । हम बता रहे हैं—भाव है क्या, इसे समझना चाहिए । भाव को समझता ही नहीं है आदमी । माला जपने वाला माला में लग रहा है, कीर्तन वाला कीर्तन में और सेवा वाला सेवा में लगा रहता है लेकिन 'भाव' क्या है, इसे नहीं समझता । भाव कितनी विशद वस्तु है ! इसे ध्यान से समझो । गोस्वामी विट्ठलनाथजी के समय की बात है—एक वैष्णव था, वह बड़ा विरक्त था, भिक्षा माँगकर खाता, कुछ संग्रह नहीं करता था । अब कोई यह कहे कि हम पैसा नहीं छूते, हम भिक्षा माँगकर ही खाते हैं, इतना करने से ही हम सिद्ध हो जायेंगे तो यह कोई सिद्धाई की बात नहीं है । तुम्हारे हृदय में भाव है कि नहीं ? भाव इससे अलग है । अगर तुम्हारे अन्दर 'अहं-भाव' आ गया तो तुम्हारा तो हो गया सत्यानाश । भाव क्या चीज़ है ? इसे इस वैष्णव वार्ता से समझो । गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिष्य वह वैष्णव एक पुष्टि मार्गीय क्षत्राणी वैष्णव महिला के पास जाता था क्योंकि वह ठाकुरजी की सेवा के लिए धन दिया करती थी । परन्तु पुष्टिमार्गी वल्लभ सम्प्रदाय में इतनी मर्यादा है और उस मर्यादा को कोई समझता ही नहीं है । गुसाईं जी ने स्वयं उस वैष्णव से कहा —"तुम उस स्त्री के पास क्यों जाते हो ? तुम शुद्ध वैष्णव हो, यह हम मानते हैं ।" ये शब्द हैं गुसाईं जी के लेकिन कोई वल्लभ कुलिया इस बात को नहीं समझता है । वल्लभ कुलिया इन वार्ताओं को पढ़ने के बाद भी मनमाना काम करते हैं । गोस्वामीजी ने वैष्णव से कहा कि मुझे डर है कि प्राकृत भाव आ जाएगा बीच में ।

हमारे गुरुदेव ने एक बार हमसे कहा था—"देखो भाई ! अपने निवास स्थान में चाहे तुम्हारी माँ है, चाहे बहन है किन्तु तुम उनसे अलग रहना।" मैंने पूछा —" ऐसा क्यों?" गुरुदेव ने कहा - "स्त्री कोई भी पास में है तो बहुत सावधानी चाहिए ।" भागवत में लिखा है - 'मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।' माँ-बहन के साथ रह रहे हैं तो वहाँ भी अत्यन्त सावधानी के साथ रहो क्योंकि इन्द्रियाँ बलवान होती हैं । विशुद्ध भक्तिमय भावों के संरक्षण-संवर्द्धन के लिए मायिक विकारों (कामादि दोषों) से बचना बहुत जरूरी है, इसके लिए सतत् सत्संग का श्रवण-मनन-अनुगमन करो । वही बात गुसाईंजी ने भी कही तो उस वैष्णव ने साफ-साफ कह दिया—"महाराज ! हम उस वैष्णव महिला के पास इसलिए जाते हैं क्योंकि ठाकुरजी की सेवा के लिए ज़रूरत पड़ती है ।" अब ठाकुरजी के श्रीविग्रह को रखो तो उनकी सेवा के लिए अगरबत्ती भी चाहिए, आरती के लिए भी घी चाहिए किन्तु ठाकुर सेवा करने वाले जितने हैं, वे इस बात को नहीं समझते कि तुम्हारी आरती और ठाकुरजी के नैवेद्य से ज़्यादा ज़रूरी है 'मर्यादा' । ये गुसाईं जी के शब्द हैं । उन्होंने उपदेश दिया—"भले ही वह स्त्री वैष्णव है, उसके पास धन है और वह ठाकुर सेवा के लिए धन देती है किन्तु तुमको किसी भी आशा से उसके पास नहीं जाना चाहिए।" गोस्वामी जी के ये वचन उस वैष्णव के दिमाग़ में नहीं बैठे और वह बोला —"अरे ! वह तो बड़ी भक्त है महाराज !" बाहरी रूप जो होता है, उसको देखकर हम लोग भ्रमित हो जाते हैं । जैसा कि उस वैष्णव ने कहा कि वह तो बड़ी भक्त है । गुसाईंजी ने जान लिया कि यह वैष्णव हमारी बात समझ नहीं पाया । उन्होंने विचार किया कि इसको मुझे शिक्षा देनी चाहिए क्योंकि यह झूठे व्यामोह में फँसा हुआ है कि यह हमारे

सम्प्रदाय की है, तिलक लगाती है, हमारी गुरु बहन है । भले ही कोई गुरु बहन है किन्तु मनुष्य को मर्यादा के साथ आचरण करना चाहिए । वैष्णव की मनोस्थिति देखकर गोसाईं जी ने उसको शिक्षा देने के लिए एक नाटक सा किया । उन्होंने कहा—"मुझको श्रीनाथजी की सेवा के लिए पाँच हजार रुपये चाहिए ।" वैष्णव बोला—"हम अभी दिला देंगे महाराज, वह तो मुझे बहुत मानती है ।" गुसाईं जी बोले—"अच्छा, ले आओ ।" महापुरुष ने यह नाटक इसलिए किया ताकि हमारे जैसे बेवकूफ लोगों की खोपड़ी में सही बात घुसे और सच्चा रास्ता हम लोग पकड़ें । वह वैष्णव गया उस क्षत्रिय महिला वैष्णव के पास और उससे कहा कि गुसाईं जी को श्रीनाथजी की सेवा के लिए पाँच हजार रुपये चाहिए । उस स्त्री ने धन दे दिया । वैष्णव ने पाँच हजार रुपये ले जाकर गुसाईं जी को दे दिया । गुसाईं जी ने अपने सेवक को बुलाया और कहा —"इस धन को ले जा धरती में गाड़ दे । मुझे धन की कोई आवश्यकता नहीं है । जब मैं कहूँ तब धरती खोदकर धन ले आना।" उस ज़माने में पाँच हजार रुपये बहुत कीमती थे । आजकल के पाँच करोड़ रुपये के बराबर उनकी कीमत थी । एक-दो महीने बीतने के बाद उस वैष्णव महिला ने अपने गुरु भाई से कहा—"क्यों जी ! तुम कह गए थे कि एक महीने में पाँच हजार रुपये वापस कर दूँगा तो अब मेरा धन मुझे दो ।" अब वह वैष्णव गुसाईं जी से संकोच के कारण धन नहीं माँग सका किन्तु उसने अपनी गुरु बहन से कहा कि चिन्ता मत करो, तुम्हारा धन तुम्हें मिल जाएगा । दो महीने हुए, तीन महीने बीत गये और वैष्णव ने जब धन नहीं वापस किया तो उसकी गुरु बहन ने आँखें दिखाईं, उसे फटकारा । अरे ! पैसा की ममता सहज में थोड़ी छूटती है? जब गुरु बहन ने आँख दिखाई तो इन वैष्णव को उसके असली स्वरूप का पता पड़ा और वह सोचने लगा कि इसको तो हम बड़ी भगतानी मानते थे और आज यह कैसा व्यवहार कर रही है ? उसने गुरु बहन से कहा—"अरे ! तुम कैसी वैष्णव हो? पैसा के लिए इतना क्यों मरती हो ? तुम्हारा पैसा तुमको मिल ही जाएगा ।" यह सुनकर उस स्त्री ने अपना रूप बदल लिया । उसने सोचा कि यह तो मेरा गुरु बन रहा है । पाँच हजार रुपये के महत्त्व को समझता ही नहीं है । उसने देखा कि यह वैष्णव आसानी से पैसा वापस नहीं करेगा तो उसने अपने सिपाही उसके पीछे लगा दिए कि कहीं यह भाग न जाए । वह वैष्णव भिक्षा माँगने जाता तो सिपाही उसके साथ जाते थे । कहीं भी जाता तो सिपाही उसके साथ जाते थे । अब तो उस वैष्णव के लिए 'जेल' की सी कैद हो गई । एक दिन वह गुरुदेव का दर्शन करने गया तो सिपाही भी साथ में गये । गुसाईं जी ने देखा तमाशा तो उससे पूछा कि क्या बात है ? वैष्णव रोने लगा और बोला - "महाराज ! हमें तो कैद हो गई है ।" गुसाईं जी ने पूछा – "ऐसा क्यों हुआ ?" वैष्णव बोला – मैं आपसे कुछ कह नहीं सका किन्तु अब वह स्त्री पाँच हजार रुपये माँग रही है ।" महाराज बोले—"अरे भाई ! तू तो कहता था कि वह बड़ी भक्त है । उसने अपना तन-मन-धन, सब कुछ प्रभु को अर्पित कर दिया है । " वैष्णव बोला—"महाराज ! हमसे बड़ी भूल हुई, हम उस समय आपकी शिक्षा समझ नहीं पाए । अब तो मुझे जीवन भर कैद में ही रहना पड़ेगा । अब तो ऐसा लगता है कि आपके और श्रीनाथजी के दर्शन भी कुछ दिनों बाद बंद हो जायेंगे । " गुसाईं जी ने जब देख लिया कि अब यह रो रहा है, अपनी गलती पर इसको पछतावा हो रहा है तो वे हँसने लगे और सेवक से बोले—"जा, खोद ला इसके पाँच हजार रुपये ।" जब सेवक धरती से खोदकर पाँच हजार रुपये लाया तो गुसाईं जी ने उस वैष्णव को दिया और बोले—"यह हमारे सम्प्रदाय का वैष्णव है, हमारा गुरु भाई है, हमारी गुरु-बहन है—यह सब (अहंकार का) गलत मामला है ।" अतः कहीं जाओ तो शुद्ध भाव से जाओ और अपने पास उतना ही द्रव्य रखो, जितना प्रयोजन है ।

चेत करो बाबा बिलैया मारै मटकी ।
ब्रह्मा पै झपटी शंकर पै झपटी, नारद जी को सभा बीच पटकी ।
श्रृंगी कै मिंगी करि डारी, दुरवासा के मनहिं मन खटकी ।
ज्ञानी पै झपटी और ध्यानी पै झपटी, पंडित जी कै पुरान लै सटकी ।
कहत 'कबीर' एक दिन मोहू पै झपटी, कासी से लैकै मगह बीच पटकी ।
सतगुरु शरण नाम की आसा, तिनकी और माया कबहुँ नहिं लटकी ॥

।। गो सम्मान आह्वान अभियान के मुख्य उद्देश्य ।।

केंद्र सरकार और देश की सभी राज्य सरकारों से विश्व, राष्ट्र और भारतीय संस्कृति के हित में संविधान के दायरे में रहकर अहिंसक तरीके से प्रार्थना कर सम्पूर्ण भारतीय देशी गोवंश को विधिवत सेवा पूर्ण सुरक्षा एवम् राष्ट्रीय सम्मान प्रदान करवाना ।

(1) सम्पूर्ण भारत में गौहत्या पर पूर्णतः प्रतिबंध लगे/गौहत्या पूर्णतः समाप्त हो। (जिससे देशी गोवंश पूर्णतः सुरक्षित हो)

(2) गोमाता को राष्ट्र माता अथवा राष्ट्र आराध्या, का सवेधानिक पद प्रदान कर राष्ट्रिय सम्मान दिया जाये । (देशी गो नंदी को सम्मान मिले)

(3) गो सेवा हेतु केंद्रीय कानून लागू हो और केंद्रीय गौ सेवा मंत्रालय बनें ।(जिससे संपूर्ण भारतवर्ष में समान रूप से देशी गोवंश की सेवा हो सके)

(4) गोचर बोर्ड बनें, चारा सुरक्षा नीति तय हो, गौ आधारित कृषि सुनिश्चित हो, वेदलक्षणा गोवंश से प्राप्त पंचगव्य उत्पादों का निर्माण एवम् विपणन बढ़े शिक्षा में गौ महात्म्य को जोड़ा जाये ।

संपर्क और जुड़ाव

गो सेवा और गो रक्षा के माध्यम से होने वाले राष्ट्र रक्षा एव संस्कृति रक्षा के इस निष्काम और पवित्र अभियान में सम्मिलित होने के लिए

(1) अभियान से जुड़ने के लिए मिस कॉल करें – 9067777323

(2) अपनी विस्तृत जानकारी भेजें – Whatsapp No. 8239711008

(3) अधिक जानकारी के लिए कॉल करें – 9571712140

(4) वेबसाइट पर ऑनलाइन फॉर्म भरें – https://www.gausamman.cloud

NO DONATIONS

इस अभियान हेतु किसी भी प्रकार का दान चंदा स्वीकार नहीं किया जा रहा है। अगर कोई इस अभियान के नाम से दान चंदा मांगे, तो 8239711008 नंबर पर व्हाट्सएप के माध्यम से शिकायत करें।

New central office - A-4, Pushpanjali Enclvae , Outer Ring Road , Pitampura , Delhi -110034

अधिक जानकारी हेतु अभियान की वेबसाइट पर विजिट करें ।

https://www.gausamman.cloud

अभियान के फेसबुक, यू ट्यूब, इन्स्टा, व्हाट्सअप और अन्य सोशल मीडिया अकाउंट के लिए QR कोड स्कैन करें

https://www.gausamman.cloud/socialmedia

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26